

कुट—

वायर द्वितीय देवता—देवता
कुट्टार वायर कुट्टार
भावनगर.



प्रकाश—

वल्लभदास विभुवनदास
र' ची-हे० भी जी अल्ला-
वाह सरा—भावनगर

प्रस्ताविक निवेदन.

आ आवकधर्मविधि प्रकरण नामनो अति प्राचीन ग्रन्थ घणी प्रसिद्धिमां आव्यो होय एम जणातुं नदी. कारणके घणा हस्तलिखित प्राचीन पुस्तक भरण्डारोनी तपासना परिणामे हुं वेज पुस्तको मेळवी शक्यो छुं. जो आ ग्रन्थनो विशेष प्रचार धयो होत तो घणा आदर्शो मळी आवत. आ अपूर्व ग्रन्थ नष्ट न थांथ अने लोकोना उपयोगमां आवे तेवा हेतुथी आ लघु पण रहस्य-पूर्ण ग्रन्थने जनसमाज आगळ जाहेरमां मूकवा प्रयास कर्यो छे.

आ प्रकरणातुं जेबुं नाम छे तेबुंज तेमां वर्णन छे. तेथीज आ प्रकरणातुं जे नाम राखवामां आव्युं छे ते यथार्थ छे. जो के आ प्रकरणमां जे विषयनुं वर्णन छे तेज विषयनुं वर्णन आ प्रकरणना कर्ता याकिनीमहत्तरासूत्र श्रीमद् हरिभद्रसूरिए आवश्यक-वृहद्बृत्तिआदिमां घणा विस्तारपूर्वक गुंयेलुं छे. परंतु तेवा अतिगहन ग्रंथोनुं अवगाहन नहि करी शकनार अल्पबुद्धिवाळा जिशासुओ आवा विषयथी सर्वथा अज्ञात न रहे एवा उद्देशयी तेओना उपकार माटे आ प्रकरणनी रचना यइ होय तो ते संभावनीय छे.

आ प्रकरणना कर्ता असाधारण विद्वान् अने सकलजिनागमपारगामी होवाथी एमनी कृतिमां सहज गंभीरता आवे ए स्वभाविक छे. आ प्रकरणमां रहेला गंभीर आशयोनुं स्पष्टीकरण करवा माटे कोइक महर्षि महाशये आ प्रकरण उपर विस्तृत टीका

लाली हर्ती एम आ प्रकरणनी 'प्रशास्तिता आग काव्य उपरपी
स्पष्ट जणाय दे परु ते टीका साप्रत फोलमा कोइ पण ठेका
रेना पुस्तक भडारमा हठिगोचर यर्ती नयी ए विस्तृत टीकाना
आपारे श्रीमान् ३मानदेवमूरिए मांदशांकृप आ टीका रची देणे
ए प्रशास्ति उपरपी स्पष्ट याय दे

आ प्रकरण माझुव भायामा एकसो वीस गायामा गुणेनु छे
तेमां आवकथमेना स्वरूपने देवगढवा रूप मुख्य विषयनु अने
यीजा बेटलाएक मुख्य विषयना अगम्भूत अवातर विषयोनु परा
वण्णन दे

आ प्रकरणनी अविम गायामा—“ भवविरहवीयमूर्खो ”
एवो पाठ होवायी अने शृंचिमा पण—“ इह च ‘विरह’
इति सितावरभीहरिभद्राचार्यस्य क्वेरक ” एवो उल्लेख करवायी
तेमन विरहपदाकित सघङ्गा प्रयो याकिनीमहनरासुनुशीहरिभद्र
सूरिए करेला छे एम जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, मुनिचद्रसूरि
विग्रे घण्डा प्रमाणिक आचार्योने पण अभीष्ट होवायी प्रस्तुत प्रक-
रणना फर्दा अमिदू हरिभद्रसूरि निर्विवाद मिद्ध याय छे

१ “ एव भीहरिभद्रसूरितित तवेऽव दृति मया प्राय पूर्वनिष्ठाहरितामो
दिस्माप्तस्तामिमाम् । ”

२ “ इति निदित्वतोर्युरिमेना स्वशक्त्या
स्वभिन्नतमीहापूरि पुर्यं मवाऽऽतम् ।
पातुदित्यगुभमत्या धर्मवेति भव्या ।
रिन्द्रस्तु वतिभक्ता नातुमन्तनदेवा ॥ २ ॥ ”

श्रीमद् हरिभद्रसूरिना समय निर्णयमाटे हालमां वे मत पडेला देखाय छे. तेमां एक पक्ष प्रद्युम्नसूरि आदि घणा आचार्योंना उल्लेखना आधारे श्रीमद्भुजो कालनिर्णय छट्ठी शताब्दी अने वीजो पक्ष प्राकृत “कुवलयमालाकथा” ना उल्लेखने आधारे आठभी शताब्दी सिद्ध करे छे. माटे श्रीमद्भुजा समय निर्णयना. विशेष जिज्ञासुओए मुद्रित धर्मसंग्रहणी उपर मुनिश्रीकल्याणविजयजीए लखेली विस्तृत प्रस्तावना अने श्रीयुत जिनविजयजी संपादित साहित्य संशोधकनो वर्ष १ अंक १ जोइ लेवो.

आ प्रकरणना टीकाकार श्रीमान् मानदेवसूरिनो समय निर्णय करवो घणो मुश्केल छे. कारणके एमना संबंधमां साक्षात् कोइ प्रवल प्रमाण भने मळी शक्युं नथी. तेमज लघुशांतिना कर्ता विगेरे अनेक मानदेवसूरि थया छे. तेमांथी कया मानदेवसूरिए आ टीका करी ? ए कहेबुं प्रमाणना अभावे दुर्घट छे.

पूज्यपाद श्रीमद् हंसविजयजी महाराजना स्वर्गवासी शिष्य मुनिश्रीदौलतविजयजीना सदुपदेशाथी सौराष्ट्रदेशमां आवेला मांग-रोळ वंदरना रहेवासी हाल मुंधइ वसता उदाराशय शेठ प्रेमजी नागरदास, शेठ जमनादास मोरारजी अने शेठ फुलचंद वेलजीए आ प्रकरण छपाववामां जे आर्थिक सहाय करी छे. ते माटे तेमना आ शुभ कार्यनी कोइ पण प्रशंसा कर्या विना रहेशे नहीं.

आ सटीक प्रकरण तैयार करवामां वे पुस्तकोनी ज मदद मळी छे. तेमां अ पुस्तक भांडारकर इन्स्टीट्युटनुं हतुं जे गूजरात

लखी हती एम आ प्रकरणनी 'प्रशस्तिना आय काव्य उपरथी स्पष्ट जगाय हो परतु ते टीका साम्राज्य कोइ पण ठेका रेना पुस्तक भदारमा दृष्टिगोचर थती नथी ए विसृत टीकाना आधारे श्रीमान् मानदेवसूरिए मार्गदर्शकरूप आ टीका रथी हो ए प्रशस्ति उपरथी स्पष्ट थाय हो

आ प्रकरण प्राकृत भाषामा एकसो बीस गाथामा गुणेण हो तेमा आवकर्थमना स्वरूपने देखाड्या रूप मुरद विषयतु अने यीजा केटलाएक मुरद विषयना अगमूत अवातर विषयोनु पण वर्णन हो

आ प्रकरणनी अतिम गाथामा—“भवविरहयीयभूधो”^१ एवो पाठ होवाथी अने यृत्तिमा पण—“इह च ‘विरह’ इति सिवावरथीहरिभद्राचार्यस्य कवेरक ” एवो उल्लेख करवाथी तेमज विरहपदाकित सापळा भयो याकिनीमहरायसुनुश्रीहरिभद्र सूरिए करेला हो एम जिनेभरसूरि, अभयदेवसूरि, मुनिभद्रसूरि विनेरे घणा प्रमाणिक आचार्योने पण अभीष्ट होवाथी प्रस्तुन प्रकरणना कर्ता अमिद्द हरिभद्रसूरि निर्विवाद सिद्ध थाय हो

१ एव धीहरिभसूरिभिते तवेऽप्त शृंति मया प्राय पूजनिषद्गुरिप्रशतो
दिमावस्थाभिमाम् ॥

२ इति विदिवनोष्टुप्तिमेता स्वयमन्या
वभिमनमनीहारूरि पुण्ये मवाऽऽस्तव् ।
ततुदिग्गुमभक्त्या धमेतेति सद्या ।
विष्णु वनिगक्त सातुनमानदेवा ॥ २ ॥

श्रावकधर्मविधिप्रकरणगाथाकाराद्यनुक्रमः ।

| गाथाद्यपादः | गाथा | इह सहस्रभक्तवाणं | दृष्टि |
|---------------------|------|--------------------|--------|
| अइसेसइब्बूधम्म- | ६७ | उचियं सेवइ वित्ति | ७ |
| अन्नाईणं सुद्वाण | १०१ | उब्बूहोतिरियदिसि | ८९ |
| अप्पदिदुप्पडिलोहिय- | १०० | उसुत्तमणुवहडं | २४ |
| अन्वंभे पुण विरई | ११६ | उसुत्तमायरंतो | २३ |
| अविरुद्धो ववहारो | ११४ | उसुत्तं पुण एत्यं | २६ |
| अह मन्नसि होइ चिय | ४३ | एए पुण विशेया | ८ |
| अह सो सम्मदिट्टी | ४९ | एएसुं चिय खवणा- | ६२ |
| अहिगारिणा खु धम्मो | ३ | एएहिं तदहिगारि- | १२ |
| आउयपरिहाणीए | ११८ | एत्तो चिय तेसिमुव- | २८ |
| आरंभे मिच्छत्ते | ३८ | एत्य उ सावगधम्मो | १०९ |
| आरंभे विव मिच्छे | ३७ | एत्य य पासत्थाई- | २२ |
| आह तिहाइणुमई जं | ३९ | एत्यं पुण अहयारा | १०३ |
| आहारदेहसकार | ९९ | एमाइ वहुविगप्तं | २७ |
| इच्छापरिमाणं खलु | ८७ | एयं अरणंतरुत्तं | ३२ |
| इझीओ रोगविहा | ५८ | एवमसंतो वि इमो | १०८ |
| इय आरंभेइणुमई | ४१ | एवं वाया न भणइ | ३३ |
| इय मिच्छाओ विरमिय | ४४ | एवं संवासकओ | ४२ |
| इय सपरपक्षविसयं | ३१ | ओगाहइ तत्येव उ | ९१ |
| इहरा ठएइ कर्षे | २९ | करदाणेण य सव्वे | ४० |

पुरावत्त्व संशोधक मंदिरना आचार्य श्रीयुत-जिनविजयजी मारफत
अने बीजुं च पुस्तक पाटण सागरगच्छना पुस्तक उपरथी
उत्तरावेलुं पूज्यपाद प्रबर्तक श्रीमत्कान्तिविजयजी महाराज पासेथी
मन्त्र्युं हतुं. आ वज्रे पुस्तको पणां अगुद्ध हतां. आ प्रकरणां
संशोधन करवामो आगमप्रकरणादिसंशोधक श्रीमत् सागरानंद-
सूरिजीए जे मदद करी छे. तेमना ते उपकारने हुं करी भूली
शक्तो नथी.

उपर वतावेल यज्ञे पुस्तकोना आधारे घणा प्रयत्नयी आ
सटीक प्रकरण शोधने तैयार कर्युं छे. तो पण अत्तरयोजकना
दोषयी के हठिदोषयी कोइ ठेकाणे अगुद्धि रहेवा पामी होय तो
ते ठेकाणे वाचक मद्दाशायो मुषार्यीने धांचशे एवी नम्र प्रार्थना
करी विरुं हुं.

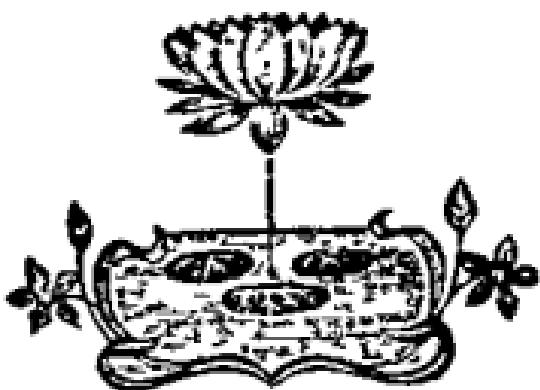
लि. मुनि चतुरविद्य.

| | | | |
|----------------------|-----|---------------------|-----|
| वाहगदोसविवक्ष्यो | ११९ | सच्छ्रुदमइविगप्तिय | २९ |
| वंधवहङ्कविच्छेयं | ८० | सम्मतमूलिया ऊ | १३ |
| भंगसयं सीयालं | ७३ | सम्मा पालियपुहुत्ते | ७१ |
| मणवयणकायदुप्पणि- | ९६ | सव्वजणवल्लहत्तं | ११ |
| मिच्छ्रुतमणेगविहं | १६ | सव्वे दुवालसंगं | ९२ |
| लोगुत्तमदेवम्मि वि | १८ | सव्वे सव्वमयाइं | ९४ |
| वज्जइ इत्तरित्रिपरि- | ८६ | साहम्मियवच्छलं | ६३ |
| वज्जइ इह आणयण- | ९८ | साहम्मियवच्छलम्मि | ६६ |
| वज्जइ इह तेणाहड | ८४ | सिक्खावयं तु एत्यं | ९५ |
| वज्जइ उड्हाइक्षम | ९० | सुत्तविउद्धस्स पुणो | ११७ |
| वज्जणमणांतगुंवरि | ९१ | सुत्ता उवायरक्खण- | १०४ |
| वयणविसंबायाओ | ३० | सुत्तापडिकुटो जो- | ६ |
| विउगच्छ त्ति व गरहा | ४९ | सुलसा अमूढदिढी | ६९ |
| विचिगिच्छ देस एगं | ९९ | सुस्सूस धम्मराओ | ६९ |
| विचिगिच्छाए विज्ञा- | ६७ | संभवमहिगिधेयं | ७७ |
| वंदणपूयणसकार- | २० | संलेहणा य अंते | ११० |
| वंदणमेयं भज्ञाइ | १७ | संसयकरणं संका | ४८ |
| सचित्तनिक्षिववणयं | १०२ | होति समत्यो धम्मं | ९ |
| सच्चित्तं पडिवद्धं | ९२ | | |

| | | | |
|-------------------|-----|---------------------|-----|
| परसमामभुद्दरेषा- | ३४ | ता कह सधासागुम- | ५६ |
| काम सदावसिद्ध | ६४ | विषि विया विषि | ५४ |
| फालतिण्ण य गुणिया | ७६ | तित्पकरभतीए | १०७ |
| करगा देसे एगा | ९३ | विधिद विधिहिंशिको | ७९ |
| कदण्प तुम्बुइय | ९४ | तुङ्गे जीवते कह | १० |
| रवयणे वेयावये | ६१ | थूलगपाहिवहस्ता | ७८ |
| रेताइहिरण्णाई | ८८ | थूलमुसावायस्त य | ८१ |
| गहणा उवरि पवता | १०५ | थूलाइताताणे | ८३ |
| गिहि घम्मापदापीई | ९ | दिसिवयगहियस्ता दिसा | ९७ |
| गुरमूले मुयपम्मो | ७९ | घिज्जाईयगिर्हाण | ६० |
| गुरविण्णओ तह नाले | १० | न करेद सय मिच्छ | १९ |
| गोसे भणिओ य विही | १२० | नमिडण यद्यमाय | १ |
| जइविस्तामण्णमुचिओ | ११९ | नवकारेण वियोहो | ११२ |
| जइ राया सिंहजणो | ३९ | निवसेज तत्य सहु | १११ |
| ज मा अहिंगवराओ | ७० | निस्तरिय निकरिय | ४६ |
| सत्तत्यसद्वाय | ६८ | निस्सकियाइरुष | ४७ |
| तत्य विहा सम्मत | १४ | परदारस्त य विरई | ८९ |
| तत्यहिगारी अत्थी | ४ | परलोगादिय सम्मा | ९ |
| तम्हा निचसईए | १०६ | पास योसशकुसील- | २१ |
| तह अस्तित्वियाय | १९ | पुञ्चपुरिसा जहोइय | ५६ |
| तह चैर्हृतरामण | ११३ | पूय य असणपाणा- | ९९ |
| तह यत्यददविरई | ९३ | पव उ अगुञ्चयाइ | ७२ |

श्रावकधर्मविधिप्रकरणवृत्त्यंतर्गतपद्यानामकारादिक्रमः।

| पद्याद्यचरणः | पत्रांकः | पद्याद्यचरणः | पत्रांकः |
|--------------------------|----------|----------------------|----------|
| अग्निर्दहति नाकाशं | ४२ | उचिअत्तेण पवित्री | १०३ |
| अत्थस्मि रागभावे | १०८ | उचिया य दाणकिरिया | १०३ |
| अनिरिक्षया पमज्जिय | ५९ | उत्सर्गनाम्यचारित्व- | १०६ |
| अप्पगंथमहत्यं | ४९ | उवसामगसोडिगयस्स | १६ |
| अर्थी समर्थः शास्त्रेणा- | ८ | ऊसरदेसं द्वृष्टेष्यं | १६ |
| अलियमुवधायजण्यं | ४५ | एगाहिअवेहिअतेहि- | ६३ |
| अवहितगतिः समंतात् | १०६ | एमेव अहाव्यंदे | २८ |
| आविराहियसामणस्स | ५१ | एमेव जारिसेण | २३ |
| असदृशगुणं तस्मात्तस्मा- | ४६ | एमेव य मूलुच्चर | २३ |
| आणाए चेव चरणं | ८ | एयं पि लुज्जाइ चिय | ७ |
| आद्यं भावारोग्यं | ५ | एवं अप्परिविडिए | ६३ |
| आयुरपूर्वापूर्वैः | १०६. | एवं ककारलंभो | ९ |
| आलोयणाए विणाए | १९ | एवं खु जंतपीलण- | ८२ |
| आवस्तगसज्ज्ञाए | २२ | एस कमो नरएसु वि | १०७ |
| आवस्तयाइयाइं | २२ | ओससो वि य दुविहो | २२ |
| इच्छे वेयावडियं | १०८ | ओसन्नो वि विहारे | २४ |
| इह खलु कपः शुद्धः सिद्धो | ४६ | कइया वच्चइ सत्थो | ८४ |
| इह हि रमणीशाखाज्ञा- | ३७ | कक्कुरुया इमा या | २३ |
| इंगाले वणसाडी | ८२ | कयसामइओ पुविंव | ५९ |



| | | | |
|-----------------------|-----|---------------------------|-----|
| धर्माधर्मपेसा | ४३ | पुंसस्तस्यां प्रवृत्तस्य | २ |
| धर्मानुष्ठानवैतत्वात् | ६ | पंचासवप्पवत्तो | २३ |
| धीरपुरिसपरिहारिणि | ५१ | प्रेक्षापूर्वकृतां प्रायः | १ |
| नरएमु सुरवेरेमु अ | १०७ | वालखीमन्दमूर्खाणां | ४९ |
| न सरह पमायजुत्तो | ८९ | ब्रह्मचारी गृहस्थश्च | ११ |
| नागमवचनं तद्वत् | ६ | ब्रह्मदेवो ब्रह्मतपो | ९२ |
| नाणे नाणायारं | २२ | भस्यइ एत्थ विभासा | २६ |
| निरिलमखिलैः सम्यग् | ४९ | मङ्गलं शाश्वसंवंधः | १ |
| निदाविगहापस्विजि- | ९ | मिच्छचं जमुहस्यं | १६ |
| निदोसं सारवंतं च | ४९ | मिच्छदंसणमहस्यं | १०२ |
| निपुणधिपणाऽयुप्यान् | ३ | मूलं द्वारं प्रतिप्रान- | १९ |
| निर्जितमदमदनानां | १०७ | य इह गदिताः स्वा- | ३७ |
| पञ्चक्षसाणं तु तदा | ६८ | यदपि च वचस्तद्वत्कि- | ४६ |
| पटिसेवणपटिसुणणा | ३२ | यदपि च भवेदल्पमन्धं | ४५ |
| पढमवीआ निलाणे | २७ | यस्तज्जनीयमतिगोप्य- | १०५ |
| पासत्याईएसुं | २३ | यूनो वैद्यन्धवतः | ६१ |
| पासत्याई वंदमा- | २४ | यो येन रक्तस्तमनु- | ९ |
| पासत्या ओससा | २१ | रायविदूसगमाई | २३ |
| पासत्यो ओससो | २१ | लद्वफलसाणमेयं | ६८ |
| पाहुणविसेसदाणे | ५७ | वयसमणाघम्मसंजम- | ९९ |
| पिता दासो दासो भ- | १०६ | वहमारणअव्यमक्त्वा- | १०७ |
| पिडविसोही समई | ५९ | विपरीता त्वितरा स्यान् | ५ |
| | | विमलमपि हि चेतः | ४८ |

| | | | |
|--------------------|-----|-------------------------|-----|
| कह गामाइयलामो | १ | जा सजमया जीवे- | ५१ |
| काऊण सधारण चिय | ८१ | जीवतस्म इह जसो | १०७ |
| काले दिणसा पहे- | ९६ | जे दसणयावणा | ६३ |
| बालो इह विणेओ | १३ | जो लेण धाहिजद | १०८ |
| वा भी श्रोत्यामनस | १०५ | ज अखारी कम्म | १०७ |
| किइसम्म य परामा | २४ | ज विसायविरताय | १०५ |
| कुणमाणो वि निविति | २८ | तण्णसयारनिसणो | १०९ |
| कुणमाणो वि य किरिय | ३८ | तत्त्वे मूढ ! भनागपि | १३ |
| कुलनिस्साए विहरइ | २२ | तत्र प्रणान् प्रणति | २ |
| केरै भणति गिहिणो | ६८ | उम्हा कम्मारीय | ३८ |
| चोउयभूइनम्मे | २२ | तिथि पर्वोत्सवा सर्वे | १४ |
| चीएयु विमर्वनेयु | २ | तिरिहो होइ कुसालो | २२ |
| र्याणम्मि उइखम्मि | १६ | तिव्ययरे च पञ्चोसे | १०७ |
| र्यीऐ दसणमोहे | १६ | तीयाइभावकहण | २३ |
| र्येत्ते रहेह गोणे | ८४ | तीरचीरुपैति रौति | १०५ |
| गूडसियग पत्त | ८० | तेसि नमो तेसि नमो | १०८ |
| गोणो चहा चलतो | २२ | तो कह शिङ्गुतीए | ६८ |
| चकाग भजमाणस्स | ८० | त्रिपा शुद्ध भैह जलमपि | १०८ |
| चोएइ चेह्याण | २६ | हुपसहत चरण | ११ |
| जम्हा न धम्ममागे | ८ | हुर्गतिप्रसूतान् जीवान् | ७ |
| जह चिरसचिभिन्निधण- | १०७ | देसम्मि च पासत्थो | २२ |
| जह चेष च मोक्षकला | ६ | दोसम्मि य सयमेच | १०८ |



सटीकं-

श्रावकधर्मविधिप्रकरणम् ।



27

— 2 —

27

॥ अर्द्धम् ॥

॥ न्यायाम्भोनिधिश्रीमद्विजयानन्दसूरिभ्यो नमः ॥

याकिनीमहत्तरासूलुश्रीहरिभद्रसूरिसंहव्यं

श्रावकधर्मविधिप्रकरणम् ।

(श्रीमानदेवद्वारिविवृतवृत्युपेतम्)

द्वेधा धर्मप्रणेतारं, नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ।

वद्ये श्रावकधर्मव्य—तन्त्रे वृत्तिं समाप्तः ॥ १ ॥

अत्र चाचार्यः शिष्टसमयप्रतिपालनाय विद्विनायकोपशान्तये प्रयोजनादिग्रतिपादनार्थं चादाविदं गाथासूत्रमुपन्यस्तवान्—
नामिऊण वद्धमाणं, सावगधर्मं समाप्त्वा वोच्छं ।
सम्मताईभावत्थ—संग्रामं सुन्तरणीईए ॥ १ ॥

“ नमिऊणे ” स्यादि ॥ इह हि शिष्टाः क्वचिदिष्टे वस्तुति
प्रवर्तमानाः सन्त इष्टदेवतानमस्कारपुरस्तरमेव प्रवर्तन्ते । तदुक्तम्—
“ प्रेक्षापूर्वकृतां प्रायः, प्रारम्भेषु चतुष्टयम् । वकुं युक्तं विनेयानां,
प्रवृत्युत्साहवर्धनम् ॥ २ ॥ मङ्गलं शाखसंबन्धः, शरीरं सप्रयोज-
नम् । चतुष्टयमभिप्रेतं, प्रत्यूहापोहि मङ्गलम् ॥ २ ॥ ” इत्यादि ।
अथमप्याचार्यो नहि न शिष्ट इत्यतः शिष्टसमयप्रतिपालनाय । तथां
श्रेयांसि वहुविद्वानि भवन्तीति । उक्तं च—“ श्रेयांसि वहुविद्वानि,

१ “ अत्राचार्यः ” इति अ-पुस्तके । २ “ वृत्युत्साहविवर्धनं ” इति अ—पुस्तके ।

भवनित महतामपि । अभ्यगमि प्रवृत्ताना, कापि यान्ति विनायका-
॥ १ ॥ ” इति । इदं च प्रकरण सम्यग्दर्शनादितुल्यान् भेदोभूत
वर्तते ऽनो विग्रहिनायकोपशास्तये, सिद्धा हीयम्, इष्टेवताम्नुनि-
प्राप्तपुल्यप्रभावान् । तदुत्तम्—“ तप्त प्रणाम, प्रेषुति-प्रह्लादे-
वता प्रति । मनोवाक्यायचेष्टाना, रिष्टेष्टविषये गतिः ॥ २ ॥
पुमस्लस्या प्रवृत्तम्य, भेदसो जन्मकर्मणः । सेन न्यक्तुतमामर्थ्या,
हीयन्ते विमहेतवः ॥ ३ ॥ सीयेतु विमर्थीतेतु, जायते निरपद्रवा ।
भोतुत्त्वाख्यात्मविषय—व्यापार्यदिपरम्परा ॥ ४ ॥ ” इति । तथा
प्रयोजनादिराहिते भेदायन्तो न प्रवर्तन्ते, तदुत्तम्—“ सर्वस्वेव दि-
शाम्य, कर्मणो वाऽपि कस्याचित् । यावत् प्रयोजनं नोहं, तावत्-
त् तेन गृह्णताम् ? ॥ ५ ॥ ” तथा—“ मिद्यार्थं सिद्धसवन्य,
भोतु भोता प्रवर्तने । शाश्वादी तेन वत्तन्यः, सवन्यः मप्रयोजन
॥ ६ ॥ ” अठ प्रयोजनादिविषयाद्वार्थं च । तप्त “ नमित्तरु
चदमाण ” मित्यनेनेष्टवेततानमस्तारमाह, अपेषव चोहन्यायादिग्रो-
परामहेतुः । “ सावगधम्म ” मिलादिना त्वभिषेयादिविषयम् । त-
थाहि—‘ भावकथम् समाप्ततो वदये ’ इति वदता साक्षान् आवस्थ-
मोऽभिषेयतया निर्दिष्टः । सामर्थ्यार्थं तत्परिज्ञानान्तरादि प्रयोजन
साध्यसाधनादिलक्षणं सपन्ध इति समुदायार्थः । अवयवार्थ
पुनर्व्याख्यालक्षणानुयोधाद् योजनाय, सर्वेत्तम् (स चायम्)—
“ समुदितपदामादौ विद्वान् वेदेति इह सहिता, तदनु च पद स्वेष्यार्थं

१ “ विद्विनादके पश्चान्तित्विषय । २ “ इदम् प्र—’ आ । ३ “ रिष्टे विषय
गति ” इति अ-कुन्तके । ४ “ पदविद् ” इति च ।

वदेदथ विग्रहम् । निपुणभणिं तत्याऽसेषं तथाऽमर च निर्वयं,
बुधजनमता सूत्रव्याख्या भवेदिति पद्धिधा ॥ १ ॥ ” तथा—
“निपुणघिपणाऽयुष्यान् शिष्यानपेत्य तथेतरान् , वद्वितिधपथान-
र्थान् सार्थान् प्रतीत्य तथा परान् । नदिः वचसां भावार्धस्त्र प्रशा-
सनमञ्जसा, तदिति विदुयां व्याख्यालद्म प्रतीतमतः परम् ॥ २ ॥ ”
इत्यादि । इह च गमनिकामात्रफलत्वान् प्रस्तुतप्रारन्वत्यानन्तरव्या-
ख्यालक्षणानुरोधेन भूम्ना भावार्धकथनं क्रियते । शेषव्याख्यालक्षण-
योजना तु स्वयमेव सूरिभिर्वर्णनीया ॥ तत्र “ नमिङ्गण वद्वगागु ”
मिति “ णमु प्रहृत्वे शब्दे ” इत्यस्य धातोः “ एतकर्तृवर्णोः पू-
र्वात् ” इति क्त्वा प्रत्यये “ कत्वातुग (मः) तुण-तुश्चाणा ”
इति प्राकृतलक्षणेन कत्वस्तूरणादेशे “ कगच्चजतदपयवां लोपाद न-
श्रुतिः ” इति तलोपे “ इच्छ कत्वातुमृतव्येषु ” इतीकोरेत्य “ नमिङ्गण ”
मिति भवति । नत्वा—प्रणिपत्य, कम् ? ‘ वर्धमानं ’ वर्तमानतीर्थ-
धिपतिम्, अत्रापि “ सर्वत्र लवरां ” इति रलोपं “ नो णः ”
इति नस्य एत्वे चैवं प्राकृतपाठः । कत्वाप्रत्यन्वयोत्तरक्रियासापेष-
त्वादुत्तरक्रियामाह—“ सावनधर्मं समासओ वोच्छ ” मिति भा-
वकाः-वद्यमाणशब्दार्थस्तेषां धर्मः—निःअन्वसनिवन्वनं सन्दर्श्वादि-
परिणामः सः, यतो निःश्रेयससिद्धिः इति वचनात् तदेतुश्च धात-
चेष्टा कारणे कार्योपचारात् श्रावकर्गमस्तग्, ‘ समासतः ’ लभेष्टे-
त्यात्मनः प्रस्तुतप्रवृत्तेः प्रयोजनमाह । ‘ वद्वे ’ अभिवात्म्ये, “ वर्चोऽन्-
उष्ण ” इत्यादिना च प्राकृतलक्षणेन ‘ वोच्छ ’ मिति भवति । एवं

१ “ णम् ” वा । २ “ प्रांतात्म्य ” वा ।

सर्वत्र प्राकुवलाज्ञणप्रसिद्ध स्वयमेव हरयम्, सर्वं हि नोच्यते प्रनभ-
विस्तरभयात्, विशेषप्राय तु भणित्याम । किंविध आवक्षपमेम् ?
इत्याह—“ सम्मताईभावत्यसगय ” सम्यक्त्वम्—अभिभास्वमान-
स्वरूपम्, आदिराज्वादिगुणतादिप्रह, सम्यक्त्वादीना भावार्थं—पर-
मार्थं सम्यक्त्वादिभावार्थं, हस्तदीर्घो मिथ “ इति वचनात्पूर्वे-
पदस्य दीर्घत्वम्, सम्यक्त्वादिभावार्थेन सगत—युक्तं सम्यक्त्वादि-
भावार्थस्तगवम् । सूत्रनीत्या ’ आगमन्त्यायेन, अतेन तु सर्वेषां-
गमानुबृत्या प्रवरणस्य प्रामाण्यमाह ॥ १ ॥

एवमाद्यगायायो मद्भलादिचतुष्यमभिधाय आवक्षपमेस्य प्र-
स्तुतत्वात् आवक्षपदस्यान्वर्थमाह—

परलोगदिष्ट सम्म, जो जियवयण सुखेह उमडत्तो ।

अहृतिव्यक्तमविगमा, सुकोसो सावगो एत्य ॥ २ ॥

‘ परलोग ’ गाहा व्यारथा—जिनवचन य शृणोति स
आवक्ष इति चोर । तत्र “ शु श्वर्णे ” अस्मात् शुणि प्रत्ययेऽ-
कादेशो ऐच्छाचादेशो च आवक्ष इति भवति । ततश्च अवणकिया-
योगात् आवक्ष, एव चातिप्रसङ्ग, प्रतिनियतश्च आवक्षयपदेशमागा-
गमे रुद, अदुलम्—“ सम्मतमिम उ लद्दे, पलिअपुहुत्तेण सा-
षधो होजा ” इत्यादि । ततो नियमवश्चाह—जिनवचन य शृ-
णोति स आवक्ष । जिनवचनस्वरूपमाह—‘ परलोगदिष्ट ’ पर-
लोक—देवादिजन्म प्रधानजन्म वा तमीं हित—एवं परलोकदितम्,
जिनवचनश्चयाद्वि परलोकोऽनुकूल एव भवति । सम्यगिति अवलो

क्रियाविशेषणम् । ‘सम्यग्’ अवैपरीत्येन श्रवणविध्याराधनेन, न तु च्छलान्वेषणादिनेत्यर्थः । श्रवणविधिश्चायम्—“निदाविगहा-परिव—जिएहि गुत्तेहि पंजलिउडेहिं । भत्तिवहुमाणपुञ्चं, उवउत्तेहिं सुणेयच्चं ॥ १ ॥” इत्यादि । तदेवाह—‘उवउत्तो’ति ‘उपयुक्तः’ दक्षावधानोऽपरशुश्रूपापरिहारेण, तेया हि तत्त्वपरिणतेरभावात् । तदुक्तम्—“विपरीता त्वितरा स्यात्, प्रायोऽनर्थाय देहिनां सा तु । या सुप्तनृपकथानकशुश्रूपाचत्स्थिता लोके ॥ १ ॥” एवंविधश्रवणे हेतुमाह—‘अइतिव्वकम्मविगमा’ इति अतिरीत्रस्य—अल्युत्कटस्य कर्मणः—ज्ञानावरणीयमिध्यात्वादेविगमाद्—विनाशादतिरीत्रकर्मविगमादिति । “इसेडें दुहि लोपः” इति इसेलोपे “जस्मस्यासु” दीर्घत्वे चैवं भवति । ततत्र्यातिरीत्रकर्मविगमाद्वेतोर्यः शृणोति स श्रावकः, नहि तीत्रकर्मविगममन्तरेण सम्यक्च्छवणसंभवः, परिणते-रभावात् । विशिष्टफलं च श्रवणमभिप्रेतम्, तच्चैवमेव । तदुक्तम्—“कह सामाइयलाभो ?, तस्सञ्चविधाइदेसवाधार्द्द । देसविधार्द्दफहुग-अरण्तवड्डीविसुद्धस्स ॥ १ ॥” एवं ककारलंभो, सेसाण वि एवमेव कमलंभो ।” इत्यादि । शेषं तु दूरभव्यस्य श्रवणमप्यश्रवणकल्पम्, तदुक्तम्—“आद्यं भावारोग्यं, वीजं चैषा परस्य तस्यैव । अधिकारिणो नियोगा—ज्वरम इयं पुद्गलावर्ते ॥ १ ॥ स भवति कालादेव, प्राधान्येन सुकृतादिभावेऽपि । ज्वरशमनौपधसमयव—दिति समय-विदो विदुर्निपुणम् ॥ २ ॥ नागमवचनं तद्वत्, सम्यक् परिणमति नियम एषोऽत्र । शमनीयमिवाभिनवे, ज्वरोदयेऽकाल इति कृत्वा

१ “पुद्गेहिं” इति अ । २ “तथा हि” व । ३ “—श्रवणहेतु—” व ।

॥ ३ ॥ " इत्यादि ॥ ' स ' इत्यादि । स इत्यनन्तरोदिष्ट ' उत्कृष्ट ' प्रधान , मुख्यश्वावकन्यपदेशानियन्धनमाजनत्वान् तस्य । यदा ' शुक्र ' शुस्तपाच्चिक ' स ' उत्तस्त्रूप श्वावक ' अत्र ' प्रस्तुते, न तु अवणक्षियासवन्धमात्रेणेति गाथार्थ ॥ २ ॥

ननु चिमिति सम्यक्षुद्गवणनियन्धनकर्मद्वासवानेवात्र श्वाव-
कोऽधिकियते नापरः ?, उत्त्वते—तत्स्वैव कियापलयोगेन प्रसुता-
नुष्ठानाधिकारित्वादन्यस्य तत्करणे दोपसभवादित्याह—

आहिगारिणा सु घम्मो, कायच्चो आणहिगारिणो दोसो ।
आणामंगायो चिय, घम्मो आणाएँ पडिवद्दो ॥ ३ ॥

" आहिगारिणा " गाहा व्याख्या—आधिकरणमधिकारः—
प्रसुतकिया प्रति योग्यत्वम्, स च प्रदर्शितकर्मद्वासतत्त्वाणो वर्त्य-
माणार्थित्वादिचिह्नव्यक्तः, स विद्यते चत्पासावधिकारी, सत्वर्थाये-
नुविधानात्, तेनाधिकारिणा । ' सु ' इति निश्चयवितर्कसभावनासु
इति निश्चयादिवचनः सुर्निपातः । तत्त्वाधिकारिणैव धर्मः कर्तव्यो
नापरेण, अधिकारिण एव कियापलयोगात्, इतरस्य चानर्थस्यापि
समवान् । एतदेवावधारणपलद्वारेणाऽप्यविलक्षणेति—“अणहिगारिणो
दोसो” ति । अधिकारी यो न भवति सोऽनपिकारी—प्रतिपादित-
प्रतीप तस्य दोष—अनयोँ धर्मकरण इति गम्यते, अनधिकारिणो
हि विराघनानिष्ठन्यनोऽनर्थ एव । अत एवोऽप्य—“अविभिरुगा-
द्वरमकृष्टमेव” । तथा चागमः—“जह चेव व मोक्षकरता, आण्या
आयहिणा गिणिदाण । सासारुक्षस्फलया, सह चेव विराहिणा
दोह ॥ १ ॥” तथा—“धर्मानुष्ठानपैतृव्यान्, प्रत्यपायो महान् भवेत् ।

रोद्रुःस्वीघजनको, दुष्प्रयुक्तादिवौपधात् ॥ २ ॥ ” ननु यद्येवं कथं
चतुर्थभङ्गपतितस्तुपकोपमितचैत्यवन्दनाधिकारेऽभिहितम् ? — “ एवं
पि जुज्जइ चिय, तयणारंभा उ तप्फलं व जश्चो । तप्पञ्चवायभावो,
विहंडि तत्तो न जुत्तो ति ॥ ३ ॥ ” इत्यादि । अत्र हि विधिही-
नभावशून्यचैत्यवन्दनाया अपि लौकिकत्वेन लौकिकवन्दनफलमुक्त-
मेव, अत्रोच्यते—नन्वत्राप्येकान्तानाराधनाद्वारेण विराधनाजनिता-
नर्थफलाभाव एवोक्तः, न हि किल चिकित्साक्रियाभासमाद्वयापारप-
रोऽपि पुरुषोऽत्र तथाविधचिकित्सापक्रियाकृतमपकारमवाप्नोति ।
विराधनासद्वावे तु तन्निवन्धनोऽनर्थः ग्रामव्य एव तत्पृथुत्तेन
प्राणिना । आराधनापक्षेऽपि यद् दर्शनलाववादिनिदानमसद्विधानमा-
धत्ते तन्निमित्तं विशेषतोऽनर्थमवाप्नोत्येवासौ । तदुक्तम्—
“ सीयलविहारओ खलु, भगवंतासावणानिच्छोगेण । तत्तो भवो
असंतो, किलेसवहुलो जश्चो भणियं ॥ ४ ॥ ” इत्यादि, तन् स्थित-
मिदमनधिकारिणः कंरणे दोप इति । अत्रैव हेतुमाह—“ आणा-
मंगाओ चिय ” इति । आद्वा—सर्वव्यवचनं तस्या भङ्गः—उक्तद्वन्नं
तत एव, “ चिय चेय एवार्थ ” इति एवकारार्थे चियनिपातः;
आद्वाभङ्ग एवात्र दोपकारणम्, शेपस्याशुभभावादेवत्रैवान्तर्भूतत्वात्
नापरमित्यवधारणार्थः । नन्वेतदेव कथं यदुत्ताऽऽद्वाभङ्गे दोपे धर्मस्तु
न भवति ? इत्याह—“ धर्मो आणाएँ पष्टिवद्वो ” इति । “ दुर्गति-
प्रसूतान् जीवान्, यस्माद्वारयते ततः । धत्ते चैतान् शुभे स्थाने,
तस्माद्वर्म इति सृतः ॥ ५ ॥ ” इति वचनान् ‘ धर्मः ’ उक्तस्त्रहृपः

‘आशाया’ उक्तस्वरूपायामेव, “दाडमिहम् तिनामिदेदद्यत” इति फेरेदोद्देश। ‘प्रतिष्ठद्’ सर्वदो व्यवस्थित इनि यावद्। तथा चोहन्—“आणाए शिख चरण, तम्भगे” गाहा ॥ तथा—“जम्हा न धन्वमग्ने, योतूरु आगम इह पमाण । विज्ञद छउम त्याण, तम्हा तत्येव जइयब्ब ॥१॥” इत्यादि । इति गाथार्थ ॥३॥

अधिकारिणमेव एवम्प्रस्तुतानिलद्वय माजादाह—

तत्यहिगारी अत्थी, समत्यओ जो शु सुनपडिछुहो ।

अत्थी उ जो विणीओ, समुवाठिओ पुञ्चमाणो थ ॥४॥

“तत्यहिगारी” व्यारथा—‘तत्र’ इति प्रस्तुते आवक घर्मे ‘तत्र’ एवव्यवस्थिते वा सर्वथैव घर्मे ‘अधिकारी’ योग्य कियाभलमागित्यर्थ । किंविष ? इत्याह—अर्थी समर्थको यो न सूत्रप्रतिकुष्ट । तत्रार्थ—श्योजनमभियास्यमानलिङ्गगम्य चत्यास्ति सोऽर्थी, पुरुषार्थेषु धर्मस्य प्राधान्यात् तत्राऽसैवनातत्यर इत्यर्थ, न तु पापलिङ्गधर्मपर्याश्चिमान् । तथा समर्थ एव समर्थक, चाषादेवकृतिगणत्वात्सार्थिक कर, ‘जातो वा स्वार्थे केहोला’ इति वा प्राहृत कप्रत्यय । ‘समर्थ’ इहक, न त्याहीकृतमयि घर्मे परेभ्यो भेयान् त्यजति । तथा यो न सूत्रप्रतिकुष्ट, ‘य’ इति उद्देशो, य एवविष सोऽधिकारीति योग, सूत्रेण—आगमेन प्रति कुष्ट—निवारितो नेति योग, कथचिदर्थित्वसामर्थ्ययुक्तोऽपि शास्त्रे निवारितोऽनधिकार्येवेत्यभिप्राय । तथाऽन्वैरप्युहम्—“अर्थी समर्थं शास्त्रेणापर्युदस्तो घर्मेऽधिकियते” इति । एषा चार्पित्वादि

गुणानामेवमेव प्रवर्तकनिरूपणाप्रवृत्तेरित्थमुपन्यासः । तथाहि—
नानर्थिनि सामर्थ्यनिरूपणावसरः, अर्थित्व एव तत्संभवात् । अत
एव कैश्चिदुच्यते—“ यो येन रक्तस्तमनुप्रवेष्टुमव्याहतस्तस्य स
एव पन्थाः । अर्थित्वसंक्षोभजडेक्षणेन, नोद्वीक्षणीयस्त्वमरेश्वरोऽपि
॥ १ ॥ ” न चासमर्थे शास्त्रपर्युदासपर्यालोचनावकाशः, असाम-
र्थ्येनैव शेषचिन्ताया निरवकाशत्वात् । एपामेवार्थ्यादिगुणानां कार्य-
लिङ्गगम्यं स्वरूपमाह—‘अत्थी उ जो’ इत्यादि, अर्थाति व्याख्ये-
यनिर्देशः, तुशब्दः पुनःशब्दार्थे । ततश्चायमर्थः—अर्थी पुनः कथं
लक्ष्यः ? तत्राह—‘ यो विनीतः समुपस्थितः प्रच्छंश्च ’ तत्र विनी-
तः—धर्मप्ररूपकं प्रति प्रतिपत्तिरूपाभ्युत्थानादिविनयं कुर्वन्नर्थीति
लक्ष्यते, तथा सम्यग् उप—सामीप्येनोत्थितः—धर्मश्रवणादौ व्यक्तीकृ-
तसम्मुखीभावः, न तु प्रयोजनान्तरैरेव क्रोडीकृतत्वादसम्मुखीनः;
तथा प्रच्छंश्च “ प्रच्छ झीप्सायाम् ” इति धातोः शतुः “ न्तमाणौ
शतशानचोः ” इति माणादेशो प्राकृते पुन्छमाण इति स्यात् ।
शीलार्थो वा “ शक्तिवयःशीलेषु ” इति लटः शानजादेशः । ‘प्रच्छन्’
झीप्सन्, धर्मस्वरूपप्रहणविध्यादिकमिति गम्यते । चशब्दस्तूक-
द्वारेण त्रिभिरपि लिङ्गैः समुद्दितैः प्रायोऽर्थित्वं परिपूर्णं लक्ष्यत
इत्याह । इति गाथार्थः ॥ ४ ॥

समर्थ व्याचष्टे—

होति समत्थो धर्मं, कुणमाणो जो न वीहइ परेसि ।
माहपिहसामिगुरुमा—इयाण धर्माणमिरणाणं ॥ ५ ॥

“होइ समत्थो” गाहा व्याख्या —‘भवति’ जायते ‘समर्थः’

इति व्याख्येयम् । किंविष ? इत्याह—धर्ममित्यादि । ‘धर्म’ उक्तस्वरूप चिकीर्षित ‘कुर्याण’ इति वर्तमानसामीद्यनिर्देशार करित्यमाण—धर्म विधास्यमानो च ‘न विभेति’ तो अस्यति, “भियो भावीहो” इति भियो विहादेश । ‘परेभ्य’ आत्मन्य तिरिक्लेभ्य, “कचित् पञ्चम्या” इति पञ्चीभाव । परानाह—‘मातापितृस्वामिगुर्वादिभ्य’ मात्राद्य प्रतीता, तेषा हृन्दू कृत्वा इदिशब्दस्य यथायोग योग । ततश्च मातापित्रादिभ्यो न विभेति, अनेन च योनिसवद्वा बन्धदो गृहीता । तथा “स्वाम्यादिभ्य” इत्यनेनापि रक्षकसद्वायादिरूपा यजामात्यभिनाद्य उपात्ता । सथा “गुर्वादिभ्य” इत्यनेन चान्वयाद्यागता अपरधर्मदातार केलो प्राप्यायाहयश्च तदाभिताश्चेषाचा इष्टव्य । एव्यश्च किञ्चुतेभ्यो भय सम्भवति ? इत्याह—‘धर्मनभिष्ठेभ्य’ अधिकृतधर्मकुरा क्लेभ्य, अधिकृतधर्मकुरालास्यु तदनुकूला एव भवेयुरित्यभिप्राय । सतश्चेतेभ्यो यथोत्तरकालभाविभ्यो वहुसमादिभयनिवन्धनेभ्यश्च यो न विभेति स भयत्रयमुक्त समर्थोऽत्र द्रष्टव्य । इति गाथार्थ ॥५॥

सूत्रापतिकुट्टमाह—

मुक्तापदिकुट्टो जो, उच्चमध्यमाण सोगविकराण ।

गिहिधम्मा चहु मण्ड, इहपरलोए विहिपरो य ॥ ६ ॥

उचियं सेवह विचिं, सा पुण नियदुस्तकमागया मुद्दा ।

माहणरुचियवहसा—ण सुद्दमुदाण नियनियगा ॥ ७ ॥

“मुक्तापदिकुट्टो” गाहा “वचिअ” गाहा व्याख्या—स्

श्राप्रतिकुष्ट इत्युक्तस्यार्थमाह—“ जो उत्तमधर्माण ” इत्यादि । य इत्युदेशः, यत्तदोर्नित्याभिसंबन्धाद् य एवंविधः स सूत्राप्रति-
कुष्ट इति योगः । ‘उत्तमधर्माण’ इति उत्तमधर्मेभ्यः, प्राग्वत्-
पञ्चम्याः पष्ठी । ‘लोकापेत्तया’ लोकाश्रयेण, लोके हि—“ ब्रह्मचारी
गृहस्थश्च, वानप्रस्थो यतिस्तथा । ” इत्यादयो ये धर्मा खडास्तेभ्यः
सकाशाद् गृहिधर्माभिति सामान्यनिर्देशोऽपि प्रक्रमादधिकृतं श्रावकधर्मं
‘वहु मन्यते’ ज्यायांसं प्रतिपद्यते, लोकधर्मापेत्तयैव श्रावकधर्मं वहु
मन्यते, न तु लोकोत्तरयतिधर्मापेत्तयापीत्यभिप्रायः । इहपरलोके
विधिपरश्च सूत्राप्रतिकुष्ट इति सखटङ्कः । तत्रेह—इत्यास्मिन् जन्मनि,
परलोके—अन्यजन्मनि, पृथक् पदे समाहारद्वन्द्वात् समम्येकवचनम्,
विषयसम्मी चेयम्, इहलोकविषये परलोकविषय इत्यर्थः । इहेति श्राव-
कधर्माधिकारनिरूपणावसरे वा परलोके विधिपरः परलोकनिवन्ध-
नधर्मानुष्ठाने प्रेकृतकल्पाराधनपरायण इति भावः । ‘चः’ समुद्दये
॥६॥ तथा ‘उचितां’ प्रकृतधर्मप्रतिकूलां ‘सेवते’ आश्रेयते ‘वृत्तिं’ वर्त-
नम्, लोकधर्मविरुद्धवृत्तिपरिहारेणोचितामेव वृत्तिं यः सेवते स सू-
त्राप्रतिकुष्ट इत्यर्थः । वृत्तिमेवाह—‘सा पुनर्निजकुलक्रमागता शुद्धा’
सा तु वृत्तिर्निजकुलक्रमेण—स्वान्वयपरिपाण्याऽऽगता—प्राप्ता शुद्धा—
तथाविधदोपरहिता, अनेन कुलक्रमागतामपि तथाविधाशुद्धां योनि-
पोपणादिकां वृत्तिमनुचितामाह । सा तु ब्राह्मणक्षत्रियवैरयानां शुद्ध-
शूद्राणां च चतुर्णां वर्णानाम्, शुद्धविशेषणं शूद्राणां तथाविधधीवरा-
दिव्यवच्छेदार्थम् । ‘निजा निजा’ आत्मीयाऽऽत्मीया, वीप्सायां दि-

१ “ इत्यस्यार्थ—” च । २ “ प्राकृतकल्प—” च । ३ “ आद्रियते ” च ।

हठो पूर्यस्य द्रस्तव्ये के च प्राकृते 'नियनियगा' इति भवति । ततश्चैवं विधो शृतिं च च शुद्धां सेवते स सूत्राप्रतिकृष्ट इत्याखेदितं भवति ॥ ७ ॥

सदेवं षट्हुमानविभिरपरतो चित्तवृचिभिर्योदन्याससंमविनीभि सूत्राप्रतिकृष्टत्वमैवयोग्य सांप्रत षट्हुमानित्यादिगमकानि प्रत्येकं पञ्च पञ्च लिङ्गानि जिह्वापयिषुरुचार्यं संबन्धमारचयन्निदमाह—

एष पुण्य विएण्या, लिङ्गोद्दितो परोवयारीहि ।

ताइं तु पञ्च पञ्च य, विएहं पि हवंति एयाइं ॥ ८ ॥

"एष" गाहा व्याख्या—'एते' इति षट्हुमान्या (माना)-व्य, पुनःशब्दो भिन्नवाक्यतायाम्, 'विशेषाः' शातव्याः 'लिङ्गेभ्य' गमकचिह्नेभ्य, "भ्यसञ्च हितो मुंतो" इति भ्यसन्तमि-दम् । 'परोपकारिभिः' परोपकाराय धर्मव्यारथादानानुशीलाचार्यादिभिरित्यर्थः । 'प्रवर्तकादिभिः' इनि उचित्याठः, तत्रापि त पव्र प्रवर्तकाः, आदिशब्दादायकशिच्चवादिपरिप्रहः । 'तानि तु' लिङ्गानि पञ्च पञ्च 'अव्याख्यामपि' षट्हुमान्या(माना)दीनां 'भवन्ति' सन्ति 'एतानि' वर्त्यमाणानि । इति गाथार्थ ॥ ८ ॥

तान्येवाह—

गिहिधम्मकहार्पीर्दि, निंदाऽस्यर्थं च तदणुकं पा य ।

सविसेसज्जाणयिच्छा, चित्तनिवेसो तद्दिं चेव ॥ ९ ॥

"गिहिधम्म" गाहा व्याख्या—'शुहिधम्मकथाप्रीतिः'

। "अवस्थोद्दृश्य" च ।

प्रस्तुतश्रावकानुष्ठानकथने प्रेसेति परमार्थः, सा वहुमानजन्यत्वाद्-
वहुमानगमकं लिङ्गम्, एवं सर्वत्र योज्यम् । तथा 'निन्दाऽश्रवणं'
प्रक्रमात् श्रावकधर्मनिन्दाया अश्रवणम् । 'चः' समुच्चये । 'तद-
नुकम्पा' निन्दाप्रवृत्तप्राणिकरुणा, साऽपि वहुमानकार्यमेव; तद्वहु-
मानाद्वि तन्निन्दोद्यतान् आपदास्पदं प्रतिपद्यमानोऽनुकम्पते, क्रिय-
मानानामनुकम्पास्पदत्वात्; न तु द्वेष्टि, पुरुषार्थानुपयोगात् । एवं वहु-
मानकार्यत्वमुत्तरयोरपि द्रैष्टव्यम् । 'चः' समुच्चये । तथा सविशेषा
ज्ञानेच्छा—जिज्ञासा सविशेषज्ञानेच्छा, प्रस्तुतगतेति गम्यते । तथा
'चित्तनिवेशस्तत्रैव' इति चित्तस्य—अन्तःकरणस्य निवेशः—न्यासः
'तत्रैव' प्रस्तुतधर्म एव । इति गाथार्थः ॥ ६ ॥

विधिपरतालिङ्गान्याह—

गुरुविशेषां तह काले, नियए चिइवंदणाहकरणं च ।

उचियासण ऊचसरो, सज्भाए सययमुवद्व्रोगो ॥१०॥

"गुरु" गाहा व्याख्या—गुरवः—मात्रादयः प्रस्तुतधर्मस-
दातारो वा तेषामुचितप्रतिपत्तिर्गुरुविनयः, स हि सर्वत्र धर्मश्रवणादी-
क्रियमाणो विधिपरतां गमयति । तथा 'काले निजे चैत्यवन्दना-
दिकरणम्' तत्र चैत्यवन्दनाया निजः कालः सन्ध्यात्रयादिलङ्घणः ।
यदुक्तं पूजानुषङ्गेण—“कालो इह विरणेश्व्रो, संभाश्व्रो तिरिण
ताव ओहेण । वित्तिकिरियाऽविरुद्धो, अहवा जो जस्त जावइश्व्रे
॥१॥” 'चैत्यवन्दनादेः' इत्यादिशब्दात् प्रस्तुतधर्मश्रवणमहणा
देश्व्रोचिते काले करणं—विधानम् । चः प्राप्नवत् । तथोचितास-

सर्वत्र धर्मधरणादी, छन्दोभद्रभयादुचरेण समस्तनिर्देशः । तथा 'युक्तस्वरः' उचितस्वनिः सर्वत्र चेत्यवन्दनादी । तथा 'स्वाध्याये' सिद्धान्तप्रसिद्धे 'सतत' सर्वदा 'उपयोगः' उपयुक्तता, सर्वमेवदधिकृतेऽन्यत्र च कियमाण विधिपरता गमयतीतिविधिपरतालि-
अत्तमस्य द्रष्टुव्यम् । इति गायार्थः ॥ १० ॥

उचितसूत्रसिद्धान्याह—

सन्वजणवल्लहर्त, अगरहियं कम्म धीरया घसणे ।

नहसती चागतवा, मुलद्वलकुचर्यं धम्मे ॥ ११ ॥

"सन्वजण" गाहा व्याख्या—'सर्वजनवल्लभत्व' सव-
लहोक्त्रियत्वम्, तद्वि समुचितवृत्तिवृत्त्येव निर्वर्तयतीति उचितशृ-
चेर्लिङ्गम् । तथा 'अगर्हित' अनिदित 'वर्ज' जीविकासत्त्वाम्,
"तत् मस्तुतान् सिद्धान् साध्यमानाच" इति वचनात्मिदावस्थाया
विवक्षितत्वात् सस्तुतरुत पव सेलोप, प्राकृते तु 'कम्म' इति
भाव्यम् । तथा 'धीरता' देन्यानाशयणहृषा 'व्यमने' विषदि ।
तथा 'यथाराक्षि' शक्त्यनविक्षमेण, प्राकृतत्वादसरयसमासेऽपि
दीर्घः । 'त्यागतपसी' प्रतीते, "द्विषयनस्य वहृवचन" इत्यौक्तो
जसि 'चागतवा' इति भवति । तथा 'मुलन्धलस्यत्व' परमा-
र्थक्षमत्व 'धम्म' पर्मविषयम् । एतदप्यरिलमौचित्ययृत्तिनिमि-
त्तमेव प्राय इति तत्त्वात्मिक्त्व सिद्धम् । इति गायार्थः ॥ ११ ॥

प्रकृत निगमयत्ताह—

एषहि तदहिगारित्तयं युवं सकुर्योहि नाउयं ।

गिहिषम्मं गाहिजा, सिद्धविराहया इरा ॥ १२ ॥

“ एए ” गाहा व्याख्या—‘ एतेः । अनन्तरोद्दैर्घ्यर्थित्वा-
दिभिः ‘ तदधिकारित्वं ’ प्रकृतश्चावकर्मयोग्यत्वं ‘ ध्रुवं ’ निश्चितम्,
लद्यते तेरिति लक्षणानि—लिङ्गानि तेः ‘ शात्वा ’ अवबुध्य ‘ गृहि-
धर्मं ’ प्रकृतं प्राह्येत्, तदप्राहणायोपस्थितमिति गम्यते । ज्ञानार्थी
वा गृह्णाति:, तेन वोधयेदप्येवंविधमेव, अन्यत्र दोपसंभवात् । तसे-
वाह—‘ सिद्धान्तविराधना ’ सर्वज्ञाशाखाखण्डना, तथाहि तदाहा—
“ आलोचणाए विणए ” इत्यादि । ‘ इतरथा ’ अन्यथा, पूर्वोदित-
निरूपणामन्तरेणापि तदप्राहणायामितर्यः । इति गाथार्थः ॥ १२ ॥

तमेव प्राहणीयतयोदितं श्रावकवर्मं संपिण्डयाह—

सम्मतमूलिया ऊ, पंचाणुव्यय गुणव्यया तिष्ठि ।

चउसिकखावयसहित्रो, सावगधम्मो दुवालसहा ॥ १३ ॥

“ सम्मत ” गाहा व्याख्या—सम्यक्त्वं मूलं—प्रथमं
कारणं येषां तानि सम्यक्त्वमूलानि, “ कमलाकृतयो वा ” इति
पुँलिङ्गता । ‘ तुः ’ अवधारणे, मन्यक्त्वमूलान्त्रेव, नहि सम्यक्त्वं—
मन्तरेणाणुत्रतादिसंभवः । तदुक्तम्—“ मूलं द्वारं प्रतिप्रानमाधारो
भाजनं निधिः । द्विपट्कस्यास्य धर्मस्य सम्यग्दर्शनमिष्यते ॥ ११ ॥ ”
पञ्चेति संख्या, अणूनि—लघूनि महात्रतापेक्षया व्रतानि—प्रतीतान्य-
गुत्रतानि । तथा गुणत्रतानि त्रीणि, पुँलिङ्गता प्राग्वत् । चत्वार-
रीति संख्या, शिक्षा—अभ्यासः तत्प्रधानानि व्रतानि शिक्षाव्रतानि-
पुनः चतुःशब्देन समाप्तः संज्ञात्वात् प्राकृतत्वाद्वा; तेः सहितः—युक-

१ ग्रहधातुरित्यर्थः, “ इकिश्चित्व स्वरूपार्थं ” सिं० ५-३-१३८
तिवप्लये ‘ गृह्णाति ’ इनि । मनन्तर सिप्रत्यये सिद्धमिदं ह्याम् ।

आवकषमेऽधिकृत ' ह्यादशाधा ' ह्यादशप्रकारे भवतीत्यन्वाहार ।
इति गाथार्थ ॥ १३ ॥

सम्यक्त्व वाचदाह—

तत्य तिहा सम्मतं, उदय उवसामियं रुचोवसमं ।

मिञ्छतपरिचारण होइ तत्पञ्जयं चेयं ॥ १४ ॥

" तत्य " गाहा व्याख्या—' तत्र ' आवकषमेऽधिकृत ' व्रिधा ' त्रिप्रकार ' सम्यक्त्व ' शुभात्मपरिणामविशेषरूपम् । त्रैविध्यमाह—' शायिक ' शायनिष्पत्तम्, तथा ' श्रीपशामिक ' उपशमनिष्पत्तम्, तथा ' शायोपशामिक ' शयोपशमाभ्या निष्पत्तम् । तत्त्वरूप सूत्र-कृतैर्वेदमन्यत्रोक्तम्—“ मिञ्छत जमुइरण, त रीण अणुइय च उवसत । भीसीभावपरिणय, वेदज्ञत रथोवसम ॥ १ ॥ उवसा भगसेदिग्यस्स होइ उवसामिथु तु सम्मत । जो था अक्यविपुनी, अखविअभिन्दो लहइ भम्म ॥ २ ॥ र्वीणमित उद्दरणम्भी, अणु इजते अ सेसमिञ्छते । अतोमुहुतमेता, उवसमसम्म लहइ जीतो ॥ ३ ॥ ऊमरदेस दहोलय व विजमड बण्डो पाप । इथ मि ञ्छसत अणुदए, उवसमसम्म लहइ जीतो ॥ ४ ॥ र्खीणे दमण मोहे तिविहमित वि भवनियाणभूयमित । निष्पत्तवायमङ्गल, सम्मत राइय होइ ॥ ५ ॥ ” इह च प्राणान्यात् शायिकादिवमेणोपन्यास, अत पश्चानुपूर्वी गायाभि स्वरूपमेषां द्रष्टव्यम् । येचनिसर्गरूप्यादिरूप तु तद्देवान्तर्मान्वयेवेति न पृथगुक्तम्, अत सहेपस्य प्रस्तुतत्वात् । तस्व तत्पार्थश्चद्वनशुद्धात्माभ्यवसायस्वरूपमपतो वै इयनि । तस्व परोक्षानिनामुचितानुचितप्रनृतिनिष्पत्तिव्याहारम्, अ-

तस्तदभिधानमुखेन तत्रापि चानुचितनिवृत्तिपूर्वकत्वादुचितप्रवृत्तेनु-
चितनिवृत्तिद्वारेण तावत्तत्त्वरूपमाविश्विकीपुरुह—‘मिच्छे’ सादि ।
मिथ्यात्वम्—अभिधास्यमानस्वरूपं तत्परित्यागेन—तत्परिहारेण
भवति जायते । यद्यपि तत् परमार्थतः कर्मग्रन्थमिदातः प्रादुरस्ति
तथाऽपि तस्यामपि मिथ्यात्वपरिहारदयः कारणीभवन्त्वेवेत्यतद्वा-
वाभिधानम् । ‘तद्वर्जनं’ मिथ्यात्ववर्जनम्, चः पुनःशब्दार्थं
मिथ्यात्ववर्जनं पुनः ‘एतद्’ वद्यमाणम्, ‘एवं’ वा वद्यमाण-
प्रकारेण, प्राकृतत्वाच्च “कगच—”इत्यादिसूत्रेण वलोपे समान एव
पाठः । इति गाथार्थः ॥ १४ ॥

तदेवाह—

न करेह सयं मिच्छं, न कारवेह करंतमवि अणणं ।

नो अणुजाणह मणसा, एवं वायाएँ काणणं ॥ १५ ॥

“न करे” इत्यादि व्याख्या—‘न करोति स्वर्यं’ न वि-
धत्ते आत्मना ‘मिथ्या’ मिथ्यात्वम्, प्राकृतत्वाद्वैवग्, ‘न का-
रयति’ न प्रयोजको भवति, मिथ्यात्वमित्यनुवर्तते, ‘कुर्वन्तमन्य-
न्यं’ विद्यतमन्यन्यं ‘न समनुजानाति’ नानुमन्यते ‘मनसा’
मनोयोगेन । ‘एवं’ ति कृतकारितानुसारिभिः ‘वाचा’ पाठ्यो-
गेन । ‘कायेन’ काययोगेन, एवमित्यनुवर्तते । तैतत्र त्रिविधेनापि
योगेन त्रिविधमपि कृतादिभेदं मिथ्यात्वं परिहरतीत्यावेदितं भवति ।
मनःप्रभृतिभिश्च कृतादिरूपसुत्तरत्र स्वयमेवाभिधास्यतीति । इति
गाथार्थः ॥ १५ ॥

१ “सत्त्वद्वा” अ । २ “वद्यमाणेन” व । ३ “अतः” अ ।

मिष्यात्वरूपमाविषु वंसत्कार्यभूता प्रयुक्तिमाह—
मिच्छ्रचमणेगमिहं, मुपाणुमारेण होइ विषेणं।
लोहपदेवेणु पसत्यमण्डकायवामाराते ॥ १६ ॥

“ मिच्छ्रत् ” गाहा व्याह्या—‘ मिष्यात्व ’ विषर्दस्ता
त्माभ्यवसायरूपम्, इह च यद्यपि जीवपरिणाम एव मिष्यात्व तथापि
परिहारविषयाकृतगमेव प्रश्नति हेतुकलभावेन मिष्यात्वमाह । ‘ अ-
नेकविषय ’ अनेकप्रकारम्, देवतादिप्रतिवस्तुविषयदसभवात् । ‘ कु-
गनुसारेण ’ आगमानुसारेण । आगमस्तु—“ समयोधासओ
पुब्लामेव मिच्छ्रताओ पटिकमइ सम्मत उवसपज्जाइ । यो मै कप्पइ
अप्पमिहं अस्यातित्यिए वा अस्यातित्यिए देवयाणि वा अस्याति-
त्यिएररिगादिआणि अहूतचेद्याणि वा विदित्ताए वा गमसित्तए
वा, पुञ्जिव अणालत्तेण आलवित्तए वा सलवित्ताए वा, तेसि अ
साय वा पाण वा व्याइम वा साइम वा दाउ वा अणुपझाउ वा
यड्यात्य रायाभिओगेण गणाभिओगेण बलाभिओगेण देवयाभि-
ओगेण गुणनिगाहेण वित्तीरुत्तरेण ” । इत्यादि । तदेव लेशात
आह—‘ क्षीकिकदेवेणु ’ भवानीप्रतिशीपतिप्रजापतिशाचीपतिरपति
तथागतप्रसूतिपु, विम् ? ‘ प्रशस्तमनोवाकायव्यापार ’ प्रशस्ताना-
मुक्तिनिमिच्छाराभ्यतासूचकाना मनावाकायाना—योगाना सस्मृति-
स्तुविष्णुनार्देव्यापार—इवाइरत्व प्रशस्तमनोवाकायव्यापार इति
समाप्त । मिष्यात्व विहेपमिति सवन्ध । इति गायार्थ ॥ १६ ॥

एव च यैषाऽर्द्धं विष्णुनादिप्रस्तवयकायोत्सगांदिना प्रवृत्ति

सन्यक्त्वं एवं लौकिकदेवेषु तत्प्रवृत्तिर्मिश्यात्वम् । वन्दनादि-
स्वरूपं त्वाह—

वंदणमेयं मल्लाइ पूयणं चत्यमाइ सक्तारो ।

माणसपीई माणो, एमाई सुहुममहगम्मं ॥ १७ ॥

“ वंदण ” गाहा व्याख्या—वन्दनम्, किम् ? ‘ एतत् ’
अनन्तरोद्दिष्टं प्रशस्तमनोवागादि, “ वादि अभिवादनस्तुत्योः ”
इति धातुपाठात् । ‘ माल्यादि ’ पुष्पदामादि देवतागतम्, किम् ?
पूजनं—पूजाशब्दवाच्यम्, आदिशब्दाद् धूपादिग्रहः । ‘ वस्त्रादि ’
वसनादि, तद्विषयः ‘ सत्कारः ’ सत्करणं सत्कारः, साध्वर्यसत्शब्द-
पूर्वात्करोतेर्थव् । मनसि भवा मानसी सा चासौ प्रीतिश्च मानस-
प्रीतिः, किम् ? ‘ मानः ’ सम्मानोऽत्राऽभिप्रेतः । ‘ एवमादि ’
एवंविधं वन्दनकरणश्रद्धादि ‘ सूक्ष्ममतिगम्यं ’ निपुणधिपणवधा-
र्यम्, मिथ्यात्वमिति संवन्धः । इति गाथार्थः ॥ १७ ॥

एवं लौकिकमिथ्यात्वमभिधाय लोकोत्तरमप्येतद्विभागेनाह—
लोगुत्तमदेवम्भि वि, लोऽयदेवाण जाणि लिंगाणि ।
इच्छापरिगगहार्दणि तेसिमारोवरणं मिच्छा ॥ १८ ॥

“ लोगुत्तम ” गाहा व्याख्या—‘ लोकोत्तमदेवे ’ अर्हति
‘ अपि : ’ समुच्चये, न केवलं लौकिकदेवगतमेव मिथ्यात्वं किन्तु
लोकोत्तरदेवेऽपीत्यर्थः । ‘ लौकिकदेवानां ’ प्राकूप्रदर्शितानां ‘ यानि ’
कानिचित् ‘ लिङ्गानि ’ इति लिङ्गयते रागादिरेभिरिति लिङ्गानि—
तथाविधान्तरज्ञरागादिगमकानि तथाविधतनुसन्निवेशवेपादिरूपाणि ।

१ “ प्रागुपदशितानां ” घ ।

तान्येवाह—इच्छा—अभिलाप तस्या परिमह—आशयण इच्छाप
रिमह, आर्ये वा ममास, स आदिर्येषां वेष्परिमहादीनां लानि ।
षथाहि लोकिकदेषानां दृश्यन्त एव तथाविभलिङ्गानि, तेषां ‘आर्ये
पण’ प्रकल्पनं ‘मिष्या’ इति मिष्यात्वम् । इति गाथार्थ ॥ १८ ॥

एव देवगत मिष्यात्वमभिपाय लिङ्गिगतमाह—

तह अस्यतित्यपार्यं, चापसप्तकाइलिंगधारीर्ण ।

पुञ्चालवणाह परिचयो य तत्त्वयणकरणार्द ॥ १९ ॥

“ तह ” गाहा व्याख्या—‘ तथा ’ देवोदितप्रकारेण ‘ अ-
न्यतीर्थिकानो ’ जैनपर्मद्विभूतानाम् । तानेवाह—‘ तापसशाक्या
दिलिङ्गधारिणा ’ चापसशाक्यादिलिङ्ग धारयन्तीत्येवरीलास्तापस
शाक्यादिलिङ्गधारिणस्तापसाद्य एव तेषाम्, ‘ पूर्वालापादि ’
प्राकृतभाषणादि “ पुञ्च अणालतण्ण ” इत्यादिनूत्रप्रदर्शित
‘ परिचय ’ सत्त्व, चराचूर्ण तु समुद्धार्यस्योत्तरम् सबन्ध ।
षट्कृतकरणादिष्ठ व्यापारे मिष्यात्वमिति सबन्ध । इति
गाथार्थ ॥ १९ ॥

तथा—

वंदयपूर्यतकारणाह सब्वं न कम्पए काडँ ।

लोकुत्तमलिंगीण वि, केसिंचेवं जओ मणियं ॥ २० ॥

“ वंदय ” गाहा व्याख्या—‘ वन्दनपूजनसत्कारणादि ’
प्राग् व्याख्यानम्, केवल सत्कारण सत्कारणा वा सत्काराशब्दान्व
ये, एवन्तारंसुन्युक्ता । तत् ‘सब्वं’ वन्दनादि मिष्यात्वमतः ‘न कल्पते’
तु युक्त्वे ‘ करुँ ’ विधातुम् । तथा ‘ लोकोत्तमलिङ्गिनामपि ’

जोहरणादिधारिणामपि ‘ केयाश्चित् ’ पार्वत्यादीनां ‘ एवं ’
अभिहितविधिना न कल्पते । ‘ यतः ॥ यसान् ॥ भणिते ॥ उक-
मागमे । इति गाथार्थः ॥ २० ॥

यदुकं तदाह—

पासत्योसरणकुसीलणीयसंसत्तजग्यमहाछंदं ।

नाऊण तं सुविहिया, सञ्चयत्तेण वर्जन्ति ॥ २१ ॥

“ पासत्यो ” गाहा व्याख्या —पार्वते ज्ञानादीनां तिष्ठतीति
पार्वत्यस्थः । तथा ऽवसीदति स्म अवसन्नः । तथा कुत्सितं शीलमस्येति
कुशीलः । तथा नित्यमेकत्र वसनानित्यः । तथा संसजनान् संसकः ।
जनशब्दस्य समूहार्थस्य प्रत्येकमभिसंबन्धः, पार्वत्यजनभित्यादि ।
तथा यथाच्छन्दो वद्यमाणस्यहृपस्तं च, पृथग् निर्देशस्त्वस्य सवि-
शेषदोपज्ञापनार्थः । ‘ जात्वा ॥ अववृद्ध्य ॥ तं ॥ आगमकथितस्वरूपं
पार्वत्यस्थादिजनं ‘ सुविहिताः ॥ इति शोभनं विहितं—अनुष्ठानं येषां
ते सुविहिताः साधवः ‘ सर्वप्रयत्नेन ॥ सर्वादरेण ॥ वर्जयन्ति ॥
परिहरन्ति वन्दनादिना । इह यद्यपि सुविहिताः साधव एव ग्रती-
तास्तेषां चैव परिहारः प्रतिपादितस्तथाऽपि श्रावकाणामपि तद्वन्द-
नादेऽपहेतुत्वेन सुविहितानुसारत एव प्रस्तुतपरिहारः प्रोक्त एव
प्रतिपत्तव्यः । अतः प्रकृतसमर्थनात एवोक्तमणुव्रतविधौ—“ पास-
त्या ओसरणा, होंति कुसीला तहेव संसत्ता । समणाण सावगाण
य, अवंदणिज्ञा जिणमयम्भि ॥ १ ॥ ” आगमेऽप्युक्तम्—“ पा-
सत्यो ओसरणो, होइ कुसीलो तहेव संसत्तो । अहच्छंदो वि अ

१ “ एव चोक्त ” व ।

एव, अवंदणिङ्गा जिणमयन्मि ॥ १ ॥ " पार्श्वस्यादिस्वरूपं च
परिमापादेमयो भाष्यादयसेयम्— " सो पामत्यो दुषिहो, सम्बे
रेसे अ होइ नायव्यो । सत्रान्मि नाणादेसयचरणाणं जो छ पास-
त्यो ॥ १ ॥ देमन्मि उ पामत्यो, गिज्ञायरुभिहृदयपिंडं च । नीर्यं
च अगगपिंड, भुंगर निकारणे चेत् ॥ २ ॥ तुलनिस्साए विद्वा,
ठवणुक्ताणि अ आकारणे विसद । संसदिपलोभग्नाए, गच्छइ
तह गंयवं कुण्ड ॥ ३ ॥ ओमलणो वि अ दुषिहो, सब्ये देसे
अ कत्य सत्यन्मि । उत्तद्वीपादपत्ताओ, ठिक्कगमोइ य नायव्यो
॥ ४ ॥ आवस्तगमगमग्नाए, पडिलोहणम्भुलभिक्षयङ्गमसहे । आग-
भणे निगमणे, टाणे अ निसीथण तुञ्चटे ॥ ५ ॥ आवस्तगाइ-
याइ, न करेइ अहव द्वीणमदिथाइ । गुरवयपणताइ यहा, भणि-
ओ एगो उ ओसाएणो ॥ ६ ॥ गोणो जहा घलातो, भंजइ भमिलं
तु सो वि पमेव । गुरवयदणं अकरेतो, यक्काइ कुण्ड च ओसोदुं
॥ ७ ॥ तिविहो होइ कुसीलो, नाणे तह दंसणे चरिते अ । एसो
अवंदणिङ्गो, परणाचो धीयरगोहि ॥ ८ ॥ नाणे नाणायारं, जो
उ विराहैइ कालमाईय । दंसणे दंसणायारं, चरणुसीलो इमो
होइ ॥ ९ ॥ कोउयभूर्णकन्मे, पसिणापसिणे निमित्तमातीवी ।
कणकुरुआ य क्षक्षणण, उवजीवइ विजमंताइ ॥ १० ॥ सोहणगाइ-
निमित्तं, परेसि एहवणाइ कोउं भणिअं । जरियाइ भूडदाणं, भूई-
फमां विणिरिहं ॥ ११ ॥ सुविणगविज्ञापहिअं, आइसयिपंटि-
आइकहिअं था । जं समिइ अरणेमि, पसिणापसिणं, हयइ पर्णं
॥ १२ ॥ तीयाइभावकहर्ण, होइ निमित्तं इमं तु आजीवं । जाद-

कुलसिष्पकम्भे, तवगुणनुत्ताइ नत्तविदं ॥ १३ ॥ कापःकुरुवाद मा-
या, नियडीए डंभरणं तु जं भणिअं । धीलक्ष्यणाइ लक्ष्यण, वि-
ज्ञामंताइया पयडा ॥ १४ ॥ संसत्तो उ इयाणि, सो पुण गोभ-
च्छलंदए चेव । उच्छिष्टगगुणिङ्गं, जं शिंगी छुबर्हइ सव्यं ॥ १५ ॥
एमेव य मूलुत्तर, दोन्ना य गुणा य जत्तिआ केर्ह । ते तन्मी स-
पिणहिआ, संसत्तो भलर्हइ तन्हा ॥ १६ ॥ रात्रविद्वासगमार्ह, अ-
हवा वि नडो जहा उ बहुस्त्वी । अत्त्वा वि गेलगो विव, दलि-
हरागाइवहुवण्णो ॥ १७ ॥ एनेव जारिनेण, नुद्रमनुद्रेण वावि
संमिलइ । तारिसओ विअ हर्वर्ह, संसत्तो भलर्हर्ह तन्हा ॥ १८ ॥
सो दुविगप्पो भणिअओ, विरेहिं विभ्रानदोसमोहेहिं । एनो
उ संकिलिष्टो, असंकिलिष्टो तदा अख्यो ॥ १९ ॥ पंचासवण-
वत्तो जो खलु तिहिं गारवेहिं पडिवल्लो । उत्तिविग्निहिसंकिलिष्टो, संस-
त्तो संकिलिष्टो उ ॥ २० ॥ पात्रत्यार्थप्सु, संविनेगुं च जस्त्व गि-
लर्ह उ । होइ लहिं तारिनअओ, पिवत्तन्नो अहव इचरो उ
॥ २१ ॥ ” ॥ २१ ॥

तद्वर्जने हेतुमाल—

एत्य य पात्रत्यार्थहिं संगत्यं चरणनासयं पायं ।

सम्मत्तहरमहाद्यंहिं उ तस्मक्षणं चेयं ॥ २२ ॥

“ एत्य च ” गाला च्याल्या---‘ अत्र च ’ पार्वत्यादिषु,
निर्वारणसप्तमी चेनन्, पार्वत्यादिषु नन्ये, ‘ चः ’ वावचोपन्या-
सार्थे, ‘ पार्वत्यादिगिः ’ उपात्यरूपैः ‘ संगतं ’ परिचित्तम्,
किं? यन्दनादिस्तपं ‘ चरणनाशकं ’ तारित्रापद्मारि । चदुक्तमा-

गमे—“ पासत्थाई वंदमाणस्स, नेव किती न निजरा होइ । कायकिलोसं एमेव, कुणई तह कम्मवंधं च ॥ १ ॥ किइकम्मं च पससा, सुद्दसीलजणन्मि कम्मवंधा च । जे जे पमायठाणा ते ते उच्चयूहिआ होति ॥ २ ॥ ” ‘ सन्यवस्त्वहरं ’ सन्यगदर्शननारियथाच्छन्दे । तुर्भिन्नवाक्यतायाम्, ‘ तज्ज्ञाणं ’ यथाच्छन्दस्वरूपं + चः । मुनरवे ‘ एतत् । वद्यमाणमागमे उकमिति गम्यते ॥ २२ ॥

उसुत्तमायरंतो, उसुत्तं चेव पण्णवेमाणो ।

एसो उ अहाष्टंदो, इच्छाष्टंदो ति एगत्या ॥ २३ ॥

“ उसुत्त ” गाहा व्याख्या—सूत्राद्-आगमादितिष्ठत्तमु-
त्सुत्रं तदुत्सुत्रं ‘ आचरन् ’ कुर्वन्, ‘ तत् ’ उत्सुत्रमेव ‘ प्रज्ञाप-
यन् ’ प्रस्तुपयन्, अनेन संविप्रपादिकस्य यथाच्छन्दताष्यवच्छेद-
गाह । तदुकमागमे—“ होज दु वसणपत्तो, सरीरदोषपङ्गयाए
असमत्यो । चरणकरणो आसुद्दे, सुद्दं मग्गं पर्वत्तो ॥ १ ॥
ओमल्लो वि विहारे, कम्मं मोदेह सुलाहबोही उ । चरणकरणं वि-
सुद्दं, उच्चयूहेतो पर्वत्तो ॥ २ ॥ ” इत्यादि । ‘ एषः । अनन्तरो-
दिवरूपः, ‘ तुः । मुनरवे, ‘ यथाच्छन्दः ’ यथा—येन प्रकारेणाऽऽ-
गमाननुपालेव च्छन्दोऽस्य यथाच्छन्द इति । ‘ इच्छाच्छन्द इति’
इच्छया च्छन्दोऽस्य स तथैकार्थम् । तथाद्यां युक्त्यागमानपेत् “
हरितोपरिवर्तिङ्गलकम्महणमेकवश्चोपरि दोपवल्लादिप्रत्युपेक्षणं
कर्तव्यम् ” इत्यादिरूपां वद्यमाणां च प्रस्तुपणामागमाननुपतिनी-
मेवाद । इति गाथार्थः ॥ २३ ॥

उत्सुत्रपदे व्याख्यातुमाह—

उसुत्तमणुवह्नं, सच्छंदविगप्यिं अणुवाई ।

परतचिपवित्ते तितिणो य हणमो अहाळंदो ॥ २४ ॥

“ उसुत्त ” गाहा व्याख्या—उसूत्रमनुपदिष्टम्, आगमे इति गम्यते । तच्च किंविधं स्यात् ? इत्याद्—‘ स्वच्छन्दविकल्पितं स्वाभिप्रायधटितम् । एवंविधमपि किल किञ्चिद्धर्धादविरुद्धं स्यादत् आह—‘ अननुपाति ’ नाऽऽगमे कश्चनाज्जनुपततीत्यर्थः । तदेवं-विधमेवोत्सूत्रमभिप्रेतम्, तदाचरणादिना यथाच्छन्दः, अतोऽन्यथाऽप्येनमाह—‘ परतस्मिप्रवृत्तः ’ इति परेषां—गृहस्यादीनां तप्तिः—कार्यचिन्तनादिरूपा परतस्मिः तत्यां प्रवृत्तो यः स तथा, ‘ तिन्तनः ’ यथालब्धभक्तादिना आनिर्वृतत्वेनाभीरुणं रुटक इत्यर्थः । चः प्रकारान्तरेण यथाच्छन्दलक्षणमेतदित्याद् । ‘ हणमो ’ अयं—अनन्तरोदिष्टो यथाच्छन्दः । इति गायार्थः ॥ २४ ॥

प्रकारान्तरेणाप्येनमाह—

सच्छंदमइ विगप्यिय, किंची सुहसायविगह्पदिवद्वो ।

तिहिं गारवेहि मज्जइ, तं जाणाही अहाळंदं ॥ २५ ॥

“ सच्छंद ” गाहा व्याख्या—‘ स्वच्छन्दगत्या ’ स्वाभिप्राय-मननेन, प्राकृतत्वाच्च सुव्लोपेन निर्देशः किंविशेषणं वा, स्व-च्छन्देन मननं यत्र विकल्पने तत्त्वां । ‘ विगह्पनः ’ चर्चयित्वा ‘ किञ्चिद् ’ इत्यनिर्दिष्टस्वरूपम्, ‘ शुभसातविश्वातिप्रतिवद्धः ’ इति शुभं—शुद्धिरूपमुपकरणादि सातं—सुतं विश्वातिः—शृगादिका, शुभादीनां द्वन्द्वः, तत्र प्रतिवद्धः—अभिष्वतः शुद्धिसुन्वरसगौरवगृद्ध-इत्यर्थः । तथा चाह—‘ विभिर्गांरचेः ’ उत्तरस्वरूपेः ‘ नाशाति ’ परवर्णी-

मवति तं जार्नादि यथाच्छन्दम्, अयमपि यथाच्छन्द इत्यर्थः ॥ २५ ॥

उत्सुचं दिव्यात्रेणोदाइरणीकुर्वभिदमाद—

उत्सुचं पुण एत्यं, शानरपाओगृहकरणादि ।

उच्चूडगकरउपा—यणाद घम्भादिगारामि ॥ २६ ॥

“ उत्सुचं ” गाहा व्याख्या—उत्सुचं पुनरप्रैप्त्यपम्, तथा—^१ स्यावरप्रायोगृहपकरणादि ’ इति स्यावरं—गृहम्, प्रयोगे भवं प्रायोग्ये वा भव प्रायोगं प्रायोग्यं वा—तथापिष्ठुदिव्युक्तं धान्यादि, कृपकरणं—कृपकरनम्, आदिरात्राद्यादिकादिप्रियह । तथाऽनुतिः—अभिनवोऽपूर्वं कर—उत्सन्नद्रव्यनिमागमहयनव-
ण उस्योत्पादन—प्रवर्तनम्, आदिशब्दादेवंप्रायं अन्यदप्यागमनि-
षिद्ध यतेष्वेत्यप्रयोजनचिन्तनादि ‘ धर्माधिकारे ’ धर्मप्रयोजनाचि-
न्त्यायाम् । इति गायार्थ ॥ २६ ॥

एमाद वहुपिगप्तं, उत्सुचं आयरंते सप्तमेन ।

अन्वेभि परणपेति य, मिच्छाए जे अहार्थदा ॥ २७ ॥

“ एमाद ” गाहा व्याख्या—‘ एवमादि ’ इति “ कर-
चज ” इत्यादिना वलोपे मन्धी चैव भवति, प्रोहप्रायमन्यदपि
इष्टव्यमित्यर्थ । यथा—^१ षोण्ड चेत्यात्यं, तं सदिरण्डणागाम-
गायादि । लगादस्म उ जट्टो, तिगरणमुढी कहं ए भवे ? ॥
१॥” इति पूर्वपत्तमाप्तदर्शनार्थ केचिद् यतेष्वेत्यसंविधेयादिविन्त-
नचेत्यन्याद्यरणादी वर्मनपथारपन्वि, सूत्रानलुपावि चेतन् । यत
एवमव्योक्तरपन्व—“ अरणाद एत्य विमासा, जो एयादं सय वि-
मागेज्ञा । न हु षोण्ड लस्त मुढी, अह षोण्ड हरेत्र एयादं ॥ १ ॥

सञ्चयत्थामेण तर्हि, संचेण होइ मागिश्वर्यं ति । सचरितऽचरित्तर्णि
य, एवं सञ्चेसि कज्जं तु ॥ २ ॥ ” अत्र हि किल दर्शनपरिभव-
प्राये पूर्वयजादिदत्तसंग्रादिलोपप्रस्ताव एव यतोरपि द्वेषादिचिन्त-
नमुक्तम्, न तु सामान्येन; अलमतिप्रसन्नेन । स्वयमेवंप्रायं आग-
मद्वैष्टीयम् । ‘ वहुविकल्पं ’ अनेकप्रकारलुत्सूत्रमाचरन्ति प्रखण्डा-
दिना स्वयमेव । तथा ‘ अन्येभ्यश्च ’ धोतृभ्यः प्रशापयन्ति त-
त्रस्त्रपणाकरणादिभिः । कथम् ? ‘ स्वेच्छया ’ स्वकीयाकृतकार्या-
नुयातया युक्त्या, न तु सिद्धान्ताधीनतया । य एवंविधा यतिवे-
पधारिणो यथाच्छन्दास्ते । इति गाथार्थः ॥ २७ ॥

एवं यथाच्छन्दवन्दनादिमिश्यात्वनिवन्धनं परिणार्यतयाऽभिधा-
यागमविशेषणात्यर्थं तन्निपेधनं प्रस्तुतफलवदेवेत्यावेदयन्निदमाह—

एत्तो विय तेसिमुवस्सयमिमि तु दिवससमागम्यो साहृ ।

तेसि धर्मकहाए, कुण्ड विवायं सह वलमिमि ॥ २८ ॥

“ एत्तो विय ” गाहा व्याख्या—‘ अत एव ’ इति यत
एव तेषां सम्पर्कमात्रादेव मिश्यात्वप्राप्निसंभवोऽत एव ‘ तेषां ’
यथाच्छन्दानामुपाश्रये तु ‘ दिवससमागतः ’ कथच्छन्नाप्यागत्याऽगतः
साधुः तेषां ‘ धर्मकथायाः ’ उत्सूत्रप्रखण्डारूपायाः ‘ करोति वि-
द्यात् ’ विद्यते प्रतिक्षेपं ‘ सति वले ’ विद्यमाने सामर्थ्यं इति, अ-
भिहितं सिद्धान्त इति गम्यते । तथायोधनिर्युक्तौ उक्तम्—“ प-
ढमवीथा गिलाणे, तइए सणणी चउत्थि साहम्मी । पंचमगम्मि अ-
वसही, छड्ठे ठाण्डिओ होइ ॥ १ ॥ ” इति । वसतिद्वारं व्या-
चक्षाणेनोक्तम्—“ संविगगसन्निभद्रगम्मुने नीयाइ मोत्तुहाय्दे । व-

अंतस्सेष्युं, वमहाए ममगणा होइ ॥ १ ॥ ” एवं यथाच्छन्दानां
सर्वंथा प्रत्यासत्ते: परिहारमभिधायागत्याप्रत्यासत्तिमंभवेऽभिदितम् ।
“ एमेय अहाथदे, पडिहयणा उभया अगमयण करणा । ठाण-
टिखो निसामे सुवण्याहरणागाहिष्यें ॥ १ ॥ ” तत्त्वं यथाकथ-
ग्रिद् यथाच्छन्दयचनामवणमभिदितम् ॥ २८ ॥

इत्येवाद—

इहरा ठएह करणे, तस्मयाया मिळ्यमेह साहू वि ।

अरलो किमु जो सहो, जीवाजीवाइभणमिएण्यो ॥ २९ ॥

“ इहरा ” गाहा व्याल्या—‘ इतरया ’ तत्क्यापतिधा-
ताशाहौ तथाविपवचनपादवाभायादिनाऽसत्यां किम् ? ‘ स्वग्रायति ’
करणदिना पिष्ठते ‘ कर्णे ’ श्रुती तद्बनमवणपरिपन्थितया, उपल-
क्षणं चैतत्, उदिनागमगदितानामध्ययनादीनां तत्क्याविधाहेन्त-
नाम् । किमर्यमेयमसो कर्हेति ? इत्याद—‘ तच्छुशेणान् ’ वया-
च्छन्दयचनमवणान् ‘ मिळ्यात्यमेति ’ विषयं याति ‘ साधुयपि ’
संभवद्विशेषभुतो यतिरापि यथाच्छन्ददेशनया विपरिणम्यते, किं
पुनः आवकः ? इत्यविशद्वार्थः । तथा चाद—‘ अवल ’ स्थाविपा-
गमाभ्यासरदितत्वेन सन्मार्गे विशिष्टावष्टम्भराहित उत्तरदानादाव-
समर्थं ‘ किं पुनः ? छिमङ्ग यः ‘ आदृ ’ अद्वावान् आवकः ?, सहु
मुवरां विपरिणमते । निमित्तमाद—जीवाजीवयोरनभिशः, तथा-
विधागमापहणादित्यमिप्राय । इति गाथार्थं ॥ २९ ॥

कर्थं विपरिणमति ? इत्याद—

वयणविसंवायात्रो, उपज्ञासंसओ फुडं जं से ।
तम्हा तमणाययणं, मिच्छं मिच्छत्तहेऊ वि ॥ ३० ॥

“ वयण ” गाहा व्याख्या—वचनयोः—सन्मार्गप्रकाशका-
ख्याताधुनाख्यायमानयोर्विसंबादात्—परस्पराधटमानत्वलक्षणात् ‘उ-
त्पद्यते संशयः ’ संभवति संदेहः—किं तत्सत्यमिदं वा ? इत्यादि-
रूपः ‘ सुटं ’ प्रकटम्, संशयकारणस्य प्रैवतत्वान्नाप्रकटत्वं संश-
यस्येति स्फुटार्थः । ‘ यत् ’ यस्मात् सन्मार्गसंशीतेनिवन्धनं ‘ से ’
एतस्य ‘ तत् ’ तस्माद् यथाच्छन्दवन्दनादि निपेद्यतया प्रकृतम्,
‘ तत् ’ वा यथाच्छन्दवव्यवस्थानादि, किम् ? ‘ अनायतनं ’ आ-
गमपरिभापितमशुद्धिस्थानम् । तदुक्तं तत्र—“ सावज्ञमणाययणं,
असोहिठाणं कुसीलसंसग्गी । एगद्वा हुंति पया, विवरीआ चेव
आययणे ॥ १ ॥ ” ननु कथमिदं लौकिकदेववन्दनादि यथाच्छ-
न्दवन्दनाद्यवसानं मिथ्यात्वम् ? यावता विपर्यस्ताध्यवसायरूपमे-
व मिथ्यात्वमागमेऽभिहितम्, अतः कथं मिथ्यात्ववर्जनावसरे व-
र्ज्यतयाऽभिधानमस्य ? इत्याह—‘ मिच्छं ’ इत्यादि । मिथ्यात्वमत्र
मिथ्यादेतुरूपमप्यभिप्रेतं हेतुफलभावेन, यथा “ तन्दुलान् वर्पते
पर्जन्यः ” इति; विपर्यस्तपरिणामकारि मिथ्यात्वनिवन्धनं चैतद्व-
न्दनादि, तेन तत्कार्यरूपं मिथ्यात्वं परिहारयता तद्वेतुरपि परि-
हार्य एवोच्यते; नहि हेतुविनाशं विना फलविनाशः, अविकल-
कारणसञ्चावेऽवश्यंभावित्वात् फलस्य; अन्यथा हेतुफलभाव एव न

१ “ प्रचल्त्वात् ना० ” ब ।

भवेत् । असमनिप्रसङ्गेन । मिथ्यात्वदेहुरपि मिथ्या
स्वम्, असमान् परिहार्यम् । इनि गाथार्थं ॥ ३० ॥

प्रलुब्धनिगमनापाद—

इय सपरपवाचिस्यं, सभारणं जायित्वं मित्यर्थं ।

पश्चनित्य तिद्व तिपिद्व य पालगुभावणा एवं ॥ ३१ ॥

“ इय ” गाहा व्याख्या—इतिरात्म एवप्रकाशर्थं । एव
प्रकार मिथ्यात्वं ज्ञात्वेति योग । इदं “ तेरितेषांक्यादी ” इति
इतेरितोऽदादेशो ‘ कगचज ’ इत्यादिना तातोपे सत्त्वेय पाठ ।
‘ स्वपरपश्चविषय ’ प्रशर्शितविभागो लोकसौष्ठोत्रयाभ्यमित्यर्थं ।
‘ सधारण ’ सद् कारणेन ‘ मिथ्यात्वं ’ देहुरूपमपि प्रशर्शित
ज्ञात्वस्यर्थं । ‘ प्रत्यारथाय ’ परिहारेणाद्विकृत्य ‘ प्रिधा ’ कृत-
करितानुमोदने ‘ गिरिधेन ’ मनसा वाचा कायेन सधैव पाल
येत् इत्युत्तरप्रियाभ्यार, ‘ पश्चकम् ’ इति तु पाठे इयमेवोत्तर-
प्रिया । पालनाभावना प्रिधा प्रिविधेन मिथ्यात्वपरिहारनिर्बहुपर-
मार्थं इत्यर्थं । ‘ एव ’ अभिधास्यमानप्रकारा । इति गाथार्थं ॥ ३१ ॥

तामेव भाष्यनामाद—

एवं अण्टतरुणं, मित्यर्थं भणसा न चिन्तद करोमि ।

सायमेसो य करेत्, अण्णेण कर वि शुद्ध कयं ॥ ३२ ॥

“ एव ” गाहा व्याख्या—एतदनन्तरोक्तं ‘ मिथ्यात्वं ’
सौकिकदेववन्दनादिक ‘ मनसा ’ चेतसा ‘ न चिन्तयति ’ नाभि-
सापत्ते, यथा करेन्यद्विर मिथ्यात्वं ‘ स्वयं ’ आत्मना, कृत-

मिदं मनसा; एव वा करोत्विति तु कारितम्; अन्येन कृते वा सुष्टु
कृतमिति मनःसन्धारणमनुमोदनम् । इति गाथार्थः ॥ ३२ ॥

तथा वाचा त्रिविधमाह—

एवं वाया न भण्ड, करेमि अण्णं च न भण्ड करेहि ।

अन्नकर्यं न पसंसह, न कुण्ड सयमेव काण्णं ॥ ३३ ॥

“ एवं ” गाहा व्याख्या—‘ एवं ’ मनोवद् वाचा न भण्ड-
ति, यथा करोम्यहं मिश्यात्वम् । अन्यं न भणति, यथा कुरु त्व-
म् । अन्यकृतं न प्रशंसति, यथा शोभनमिदं कृतम् । कायेनाऽऽह—
न करोति स्वयमेव कायेन । इति गाथार्थः ॥ ३३ ॥

करसन्नभमुहूरेवाइएहि न य कारवेह अन्नेणं ।

न पसंसह अन्नकर्यं, छोटियहसियाहचेष्टाहिं ॥ ३४ ॥

“ कर ” गाहा व्याख्या —‘ करसंज्ञाभूत्तेपादिभिः ’ का-
यव्यापाररूपैः प्रतीतैरेव नो कारयति, मिश्यात्वमिति सर्वत्र प्रकृ-
तमेव, ‘ अन्येन ’ परेण । अन्यकृतं न प्रशंसति ‘ छोटिकादसिता-
दिनेष्टाभिः ’ प्रतीताभिरेव । इति गाथार्थः ॥ ३४ ॥

एवं त्रिधा त्रिविधेन मिश्यात्वपरिहारे आवकस्य प्रतिपादिते
प्राणातिपातादाविव त्रिधा त्रिविधेन विरतिमसंभावयन् कदाचित्प-
रो व्रूयात्, यथा—

आह तिहाणुर्मई जं, संवासुवभोयपडिसुणणभेया ।

गिहिणो य सयावासो, घहुमिच्छादिद्विमज्जम्मि ॥ ३५ ॥

“ आह ” गाहा व्याख्या—‘ आह ’ परो व्रूते ‘ त्रिधा ’
त्रिप्रकारा ‘ अनुमतिः ’ अनुमोदनरूपा ‘ यत् ’ यस्मात् । त्रैवि-

म्यमेवाद्—सवासः-मिष्याटटिभि सदैकश्चास , उपमोग—त-
रुतोपजीवनम्, प्रतिभवत्य—ततुर्वत कुर्वित्यादिना प्रबत्तनम्, तानि
मेवा यस्या सा तथा, तद्देशादिति वा । ‘ शृदिष्ठ भरवासः ’
प्रहृतभाषकस्य च नित्य निष्पत्ति समयेन ‘ यदुमिष्याटटिमध्ये ’
मिष्याहटीना यदुत्यादित्यमिश्राय । इति गाथार्थ ॥ ३५ ॥

एव च—

या कह संवासाणुमद्वजाणं संमवद् सुम्यसु एत्यं ।

न हु जिणमयमिमि संवासमिच्छाओ अणुमर्द इहा ॥ ३६ ॥

‘ ता कह ’ गाहा व्याख्या—‘ तन् ’ गम्मान् ‘ कह ’
केन प्रकारेण सवासात्तुमते—सवासवशागतमिष्यात्वातुमोदनस्य
यज्ञन—परिदार, ‘ समवति ’ समस्ति ? इत्येवं परेणोत्ते मत्वाद्
सूरि—‘ शृणु ’ आकर्णय ‘ च्यव ’ मिष्यात्वे, अन्यत्र त्वाधा-
कर्मारम्भादी “ पठिसेवण पठिसुणणा, संवासत्तुमोषणा य च
उये ” इत्यादिवचनैव्यसौवातुमति” सवासनिधन्यनाऽभिहितेदमि-
श्राय, ‘ न हु ’ नैव ‘ जिनमते ’ अर्हन्द्वासने ‘ सवासमात्रत् ’
मिष्याटटिभि: सदैकश्चवसनादेवेत्यर्थः, ‘ अनुमतिः ’ अनुमोरना
‘ इषा ’ अभिप्रेता आगमसीरिति गम्यते । इति गाथार्थै ॥ ३६ ॥

विपक्षे वाधकमाद्—

आरंभे विव मिच्छे, सञ्चेसिं सञ्चहिं अइपसंगो ।

ये शुण एत्य विसेसो, यस्य इषामो निसामेहि ॥ ३७ ॥

“ आरंभे विव ” गाहा व्याख्या—‘ आरम्भे ’ पृथिव्या-
शुपमर्दनलक्ष्ये, “ पिवमिष्यविव वा इषार्थे ” इतीकार्थे विवादेत् ।

ततश्चारम्भ इवेति व्यतिरेकदृष्टान्तः, मिथ्यात्वेऽनुभतौ अस्तीक्रिय-
माणायां किं स्यात् ? इत्याह—‘ सर्वेषां ’ जिनयत्वादीनां ‘ सर्वत्र ’
लौकिकवदेव वन्दनादिरूपे मिथ्यात्वे ‘ अतिप्रसङ्गः ’ अतिन्द्राप्तिः
स्यात्, केवलिनोऽपि मिथ्यात्वानुभतिः स्यादित्यभिप्रायः । परं
आह—कः पुनरत्र विशेषः ? येनाऽरम्भे लंभयत्यनुगतिर्न तु मि-
थ्यात्वे । आचार्य आह—‘ भरयते ’ कर्त्तव्ये ‘ अत्र ’ वचनाणत-
या प्रत्यक्षो विशेषोऽयं भरयत इति संटङ्कः, ‘ निशामय ’ वृग्गु ।
इति गाथार्थः ॥ ३७ ॥

तत्र तावत् सामान्येनाऽरम्भमिथ्यात्वघोरुभतेः परिहर्य-
तयाऽभीष्टायाः स्वरूपमाह—

आरंभे मिच्छत्ते, व वद्माणस्स जं पद्म विगप्तो ।

मं अणुमन्बह एसो, होइ अ(होअ)णुमह तस्स तत्थेव ॥३८॥

“ आरंभे ” गाहा व्याख्या—‘ आरन्भे ’ अभिहितत्व-
रूपे ‘ मिथ्यात्वे वा ’ व्यस्तनिर्देशे ‘ वर्त्तमानस्य ’ प्रवर्तमानस्य,
आरम्भादाविति गम्यते । ‘ यं प्रति ’ यं आवकादिरूपमुदित्व ‘ विक-
ल्पः ’ हृदयाकृतम्, तदेवाह—‘ मामनुगम्यते ’ नामारम्भादिग्रन्थ-
तमनुमोदते ‘ एषः ’ आवकादिः, एवंल्पो विकल्पो यं प्रति ‘ भ-
वति ’ जायते ‘ अनुभतिः ’ अनुमोदना ‘ तत्त्वः ’ तत्कल्पविकल्प-
विषयीकृतस्य ‘ तत्रैव ’ आरम्भादौ, यो हि किलाऽरम्भादौ वर्त्तना-
नस्य तथाऽनुकूल्यं दर्शयति यथा तस्येवं ननः स्यान्—‘ यदुग-
मामेषोऽत्र प्रवर्तमानमनुगम्यते ’ तत्र तस्यामनुगमतिरिति हृदयन् ।
इति गाथार्थः ॥ ३८ ॥

एवं सामान्येनानुमतिस्वरूपमभिशाय मात्रतं प्रकृतनारम्भानुमत्या भिष्यात्वानुमतेवैसदरयमभिधादु संयामादारम्भानुमतिमाह—

बहु रामा सिद्धजयो, कलाकीर्ति पगड अंतवासी य ।

सब्बे मन्त्रतेऽन्, वसाम अन्नोद्धरसंगाहिपा ॥ ३६ ॥

“ जह ” गाहा व्याख्या—‘ यथा ’ इत्युदाहरणोपन्यासे, निराभायातस्य मिष्यात्वस्थानुमतेरिदमुदाहरणमित्यर्थः । ‘ राजा ’ नृपतिः, ‘ शिष्टजन ’ अमात्यादिः, धेष्ठिजन इति चचित् पाठः, ‘ कलार्जीविन ’ वर्णिण्यादय, “ हृत्यर्दीर्घा मिय ” इति इत्यत्वं कलाशीदस्य, ‘ प्रकृतय ’ मालाकाराद्या, ‘ अन्तवासिन ’ जनहृष्टमादय । ‘ च ’ समुद्दये । ‘ सब्बे ’ प्रागुक्ति ‘ मन्त्रन्ते ’ तु व्यन्ते ‘ एव ’ अभिधास्यमानस्वरूपम्, यथा वसामो वयमत्र ‘ अन्योन्यमधिका ’ परस्परोपकारवन्त इत्यर्थ, ‘ अन्योन्यसङ्गादिता या ’ अन्योन्यसङ्ग—परस्परसवन्य हिता—गतास्तेन चा हिता—उपसारिण इत्यर्थ । ते गच्छिष्ठा वसाम इत्येव मन्त्रन्ते । इति गायार्थं ॥ ३६ ॥

तथा—

करदायेय य सब्बे, अन्नोन्नुवगारियो कुडं चेय ।

राथा जायवयादि, सिष्पकलीकीवणेण च ॥ ४० ॥

“ कर ” गाहा व्याख्या—‘ करदनेन ’ आमान्यद्रव्यम-
वेशालैणामात्वादयः, चशाक्कान् तद्दमद्येत राजादय ‘ अन्योन्यो-
पक्षारिणु ।’ परस्परोपष्टम्भेवव-‘ सुदं ’ प्रकटम्, ‘ चेत्र ’ चि
“ चित्तचेय एवार्थे ” इत्येवार्थे चेयनिपातः । राजादय पालकीः

जनपदादयः पाल्याः, शिल्पकलाजीवनेन चोपकारिणः स्फुटमेव ।
इति गाथार्थः ॥ ४० ॥

प्रकृतं निगमयन्नाह—

इय आरंभेऽणुर्मई, किरियासामग्निसंगयं जम्हा ।

मिष्ठ्यं पुण भावकयं, सो पुण भावो न परजाणिओ ॥४१॥

“ इय ” गाहा व्याख्या—इतिहेतोरारम्भेऽनुमतिः, संवा-
साद्घवतीति गन्यते । प्रोक्तमेव हेतुं किञ्चिद्विशेषितमाह—‘ क्रिया-
सामग्रीसङ्गतं यस्मात् । ’ इति क्रियासामद्याम्—आरम्भप्रवृत्तिसमग्र-
तायां सङ्गतं—साङ्गत्यमन्योन्योपष्टमस्तुपं यस्मात्—येन कारणेन
तस्मादारम्भेऽनुमतिः स्यादित्यभिप्रायः । अत एव यतेः क्रियासा-
मग्रीसङ्गतेरभावान्न संवासादनुमतिप्रसङ्गेनातिप्रसङ्गः । नन्वेवं मि-
ष्ठ्यात्वे किं न भवति ? एतदाह—‘ मिष्ठ्यात्वं पुनर्भावकृतम् । ’
मिष्ठ्यात्वं हि भावकृतम्—अध्यवसायनिर्वर्तितम्, विषयस्ताध्यवसा-
यस्तुपत्वात्तस्य । पुनःशब्द आरम्भव्यापारादस्य वैशिष्ट्यमाह, ततश्च
किम् ? ‘ स पुनर्भावः । ’ मिष्ठ्यात्वस्तुपः ‘ न परजानितः । ’ न सहवा-
सिनिष्पादितः । यद्यपि श्रावकराजादिनोपष्टम्यमानो मिष्ठ्यादृष्टिलौ-
किकदेववन्दनादि मिष्ठ्यात्वं निर्वाहयति तथापि न तस्य तत्रानु-
मतिः, अध्यवसायस्यैव मिष्ठ्यात्वात् ; तस्य चोपष्टम्भः कृतः स्याद्
यद्यसौ व्यक्तानुकूल्यव्यापारं रस्यैवं विकल्पमुत्पादयेत्—‘ यदुत मामेवं
मिष्ठ्यात्वे प्रवर्तमानमनुमन्यते एपः । ’ इत्यभिप्रायः । इति गाथार्थः ॥४१॥

प्रसाधितमर्थं निगमयति—

एवं संवासकभ्यो मिच्छते गुमद्दसेमयो नात्य ।

अह तत्य रि हच्छज्जद्, ता सम्भते रि सो होइ ॥ ४२ ॥

“ एव ” गाहा व्याख्या—‘ एवं ’ उक्तनीरया ‘ संवास-
शृङ् ’ महधासानिमित्त मिच्छत्वे अनुभतेः—परेणाऽम्भित्वाणा सं-
भव—प्रसङ्गः ‘ नानि ’ न विच्छते । तदभ्युपगमेऽविमसत्तङ्गं व्याध-
कमाह—‘ अथ सत्रापि इट्टते ’ यदेव संवासेऽत्यपिकृता अनुभतिर-
भ्युपगम्यत इत्यर्थः, ततश्च ‘ सम्बक्त्वेऽपि ’ मोहषृष्टमूलवल्ले
‘ म ’ संवासमात्रप्रापितानुभतिसंमयः ‘ भवेत् ’ जायेत भवदभि-
प्रायेण । इति गाथार्थ ॥ ४२ ॥

पराभिप्रायमेवाह—

अह मन्महि होइ शिय, कह न अभव्याणमणुर्ह सम्मे ।

सिय तेसु वि क्ते दोसो, मोहउपसंगाइबहुदोसा ॥ ४३ ॥

“ आह ” गाहा व्याख्या—‘ अथ मन्यसे भवत्येव ’ इति
यदि चुप्त्यसे संवासमात्रेवानुभतिराम्भादायिव सम्बक्त्वेऽपि भ-
वत्येवत्यर्थ, ततश्च ‘ एवं ’ वेन प्रफारेण “ मांसादिपु च ”
इत्यनुस्वारलोपः, ‘ न ’ इति निषेदे ‘ अभव्यानां ’ मुक्तिगमना-
योग्यानां ‘ अनुभतिः ’ संवासनिमित्तेति प्रकृतम् । ‘ सम्मे ’ इति
सम्यक्त्वे, एवं ह्यभव्यानां सम्बक्त्वानुभतिरपि स्त्रादित्यर्थः । स्या-
च मन्यसे ‘ तेष्वपि ’ अभव्येषु ‘ को दोषः ? ’ किं दूषणं स्यान् ?
अप्रोक्यते—मोहप्रसङ्गादयो वहयो दोषा, एवं हि मोहषृष्टायत्य-
वीजसम्यक्त्वलाभसंभवेनाभव्यानामपि मोहगमनपञ्चोत्तर(श्वानु)-

१ “ नि प्रहते प्रकृतम् ” च । २ “ सम्बक्त्वेऽपि ” च ।

विमानोत्पादादयः सिद्धान्तनिपिदा भूयांसो भावाः संभवेयुरिति
भावः । इति गाथार्थः ॥ ४३ ॥

एवं सम्यक्त्वप्रतिपत्तिप्रसङ्गप्राप्तां निष्यात्वनियुक्तिं विविधं
त्रिविधेनाभिधाय निगमयति —

इय मिच्छाओ विरमिय, सम्म उवगम्म भणह गुरुपुरओ ।
अरहंतो निस्संगो, मम देवो दक्षिणण साहू ॥ ४४ ॥

“ इय मिच्छाओ ” गाहा व्याख्या — ‘ इति ’ उदितनीत्या
त्रिविधं त्रिविधेन ‘ निष्यात्वात् ’ उक्तस्वरूपात् ‘ विरस्थ ’ विरस्थ-
ज्ञीकारं कृत्वा ‘ सम्यग् ’ आगमाभिहितेन जिनप्रतिमापूजादिवि-
धिना ‘ उपगम्य ’ सामीप्येन गत्वा ‘ भणति ’ प्रतिजानीते ‘ गु-
रुपुरतः ’ दीक्षादायकाचार्यादेरप्रतः । यद्भूणति रात्राह—‘ अहंन् ’
इत्यष्टमहाप्रातिहार्यरूपां सुरकृतां सपर्यमर्दतीत्यर्हन्, “ न नाशौ
शत्रुशानचोः ” इति शतुर्नृदेशः । किंविधोऽज्ञौ ? इत्याह—‘ ति-
स्सङ्गः ’ निर्गतो वाह्याभ्यन्तरे रागकपादादिरूपः नद्दोऽल्लादिति
निस्सङ्गः, प्रतिकृतिः प्रवचनादिप्रतीयमानाशेषतागादिकालुप्यदोषवि-
रहः; तदुच्यते—“इह हि रमणीशब्दाक्षालीधराः सुरमूर्तयो, निषुण-
सुगमान् रागद्वेषभ्रमान् शमयन्त्यलम् । तव एनरियं त्वागसङ्गा
तनुः कृतकृत्यतां, प्रसभमुशाति स्वामिन् ! सत्वं प्रवणि तदत्यवम्
॥ १ ॥ य इह गदिताः स्वात्मारामा गवादिकगान्तिताः, अपि जिन !
जडैस्तेषां तत्त्वं कथं किल तत्त्वतः ? । तव हु निस्तिलं वालान्तः
स्यं परियहसुज्ञतो, मुनिवर ! भवेद् युत्तमा युत्तमं तदेतद्वाधितव्य
॥ २ ॥ ” इत्यादि । ‘ मम ’ इत्यात्मनिर्देशो ‘ देवः ’ गोद्धावात्-

धर्माया देवतेत्परं । ' दशिष्ठा ' दशिष्ठार्द्दा पूर्ण गुण इत्पर्यः,
‘ मापवः ’ यत्पवः । इति गायार्थः ॥ ४४ ॥

सम्यक्त्याभ्युपगमानन्तरं पदस्य पालमीर्चं तदाह—
अह सो सम्बद्धिः, संपुत्रं मारवरयामिन्द्रंतो ।
पालेद दंसयासारमदृहा सो पुरा इमो ति ॥ ४५ ॥

“ अह ” ताहा व्याख्या—‘ अथ ’ सम्यक्त्यप्रतिपत्त्यन-
न्तर ‘ सः ’ उत्तमस्तपः ‘ समश्टिः ’ अविपर्यस्तहृष्टिः ‘ मं॒-
र्यं॑ ’ अमरहं ‘ भावपरय ’ क्वचियोपरामादिनिष्ठनं तास्त्विके
चारित्र ‘ इत्यन् ’ अभिष्ठन् ‘ पालयति ’ मम्यगानेष्वते ‘ इर्य-
नासार ’ अविपर्यस्तप्रतिपत्तिनिवित्तमनुद्वानं ‘ अष्टपा ’ अष्टवचा-
रम् । ‘ म पुनः ’ स तु इर्यनासारः ‘ अर्य इति ’ पदस्यमात्रः ।
नहि इर्यनगुह्ये तिना कट्टिगायत्रीप्रि च तत्त्वयोदय इत्यभि-
श्राव । तदुपम—“ कुरुमात्रो वि अ दिरिच्छ, शरीषपतो वि
मदयपद्ममोगे । देवो वि दुर्लम उर, दिग्दरिही न विग्राह उ ॥ ५ ॥ तथा अ-
मात्रीय, गेडमत्तो इंगलम्ब्य पवाज्ञा । इमात्पत्तेः वि महामार्गि
द्वौनि तपनात्परजाहि ॥३॥ ” इति भारि । इति गायार्थः ॥४५॥

इर्यनासारमेवार्थं दिव्यं विद्यिति—

निम्नंकिम निर्देशित, निवित्तिगिर्वा भूदरिही य ।
उपर्युपिर्गिर्वाने, वस्त्रप्रपमारये अह ॥ ५६ ॥

“ विशांकिव ” इत्या व्याख्या—‘ विराहितः ’ विशं-

शङ्को जीवादिपु । ‘निष्काह्वितः’ निर्गताऽकाह्वोऽन्यतीर्थिकमतेषु । ‘निर्विचिकित्सः’ निःसंदिग्धोऽनुप्रानफलं प्रति । ‘अमूढदृष्टिः’ कुतीर्थिकविद्यादिदर्शनैः । ‘चः’ समुच्चये । एवं गुणगुणिनोः क-ध्विदभेदावेदनद्वारेण दर्शनाचारमभिदृष्टता तद्वदभिधानमुखेन अस्तौ उक्तः । अतस्तं ततो भेदेनाप्याह—उपवृंहणमुपवृंहा—गुणवत्सुति-रूपा, स्थिरकरणं—धर्मे चलाचलस्य स्थिरत्वापादनलक्षणम् तत्र, समाहारद्वन्द्वात्सम्बन्धेकवचनम्, तद्विपयो दर्शनाचारः, प्राकृतत्वान् प्रथमान्तं वा । तथा वात्सल्यं वत्सलभावः—साधर्मिकाणामाहारादिभिरुपम्भकरणमित्यर्थः, तथा प्रकर्पेण भावना—जिनशासनमाहात्म्याऽविष्करणरूपा तत्र, शेषं पूर्ववत् । ‘अष्टौ’ अभी दर्शनाचारा इति गाथाऽक्षरार्थः । भावार्थं स्वयमेव ग्रन्थकृदभिधास्यति॥४६॥

तत्र तावन्निःशक्तिदीनां दर्शनाचाराणां येषां यथा स्वरूप-मवतिष्ठमानमिहाभिधातव्यं तेषां तथाऽऽह—

निस्संकियाहरूवं, विवक्षवचाएण होह केसिंचि ।

तेसि विवक्षवसरूवं, भन्नङ् सेसाण नियरूवं ॥ ४७ ॥

“निस्संकिता” गाहा व्याख्या—‘निःशक्तिदित्यरूपं’ निःशक्तिदीनां दर्शनाचाराणां स्वरूपं—स्वलक्षणं तद् ‘विपक्षत्य-गेन’ शङ्कादिरूपप्रतिपक्षपरिहारेण ‘भवति’ जायते ‘केषाद्विन्’ निःशक्ति-निष्काह्वित-निर्विचिकित्सा-अमूढदृष्टिरूपदर्शनाचाराणम् । तेषामत्र विवृण्वता ‘विपक्षस्वरूपं’ शङ्कादिरूपं साक्षात् ‘भएयते’ प्रतिपादयते । ‘शेषाणां’ तूपवृंहादीनां ‘निजरूपं’ आत्मस्वरूप-मे—। अति —————— ॥ ४७ ॥

तदेवाह—

संशयकरणं संका, केशा अन्नान्दसंखगाहो ।

संतम्मि वि वितिगिर्ज्ञा, सिञ्चेऽन मे अथं अद्वो ॥४८॥

‘ संशय ’ गाहा व्याख्या—‘ संशयकरणं राष्ट्रा ’ भगव-
दहेत्यर्थीतेषु पदार्थेषु धर्माधर्माकाशा दिव्यत्यन्तगहनेषु मतिमान्द्या-
दिभ्योऽनवधार्यमाणेषु संशय इत्यर्थः, किमेवं स्थात् ? नैवप् इति;
इय तु षद्यमाणप्रकाराभ्या द्विधा । चाहुा ‘ अन्योन्यदर्शनपाहः ’
अपरापरदृश्यभिलापः, तर्थेवेषमपि द्विधा । ‘ सत्यपि विचिवित्सा ’
सिष्येन्न मेऽयमर्थं इति । अयमत्र भावार्थः—‘ विचिकित्सा ’ म-
तिविधमो युक्त्याऽऽगमोपैष्ठेष्वव्यर्थेषु फल प्रति सम्मोहः, किमस्य
महतास्तपः केशायासस्य निकत्ताकवलचर्वणप्रायस्य कनकावलयादे-
रायत्यां मम फलं भविष्यति ? किं वा न ? इति, उभयदया हि
कि ।: फलवत्यो निष्कलाभ दृश्यन्ते कृष्णलादीनाम् । न चेदं श-
ङ्कातो न भिद्यते इत्याशङ्कनीयम्, राष्ट्रा हि सकलासकलभावत्वेन
द्रव्यगुणविषया, इय तु किंविषयैव, तत्त्वतस्तु सर्वेऽन्येते प्रा-
यशो मिथ्यात्वमोहनीयोदयतो जीवपरिणामविशेषाः सम्यक्त्वाति-
चारा उच्यन्ते, नात्रैवमन्तर्भौवादिनाऽतिसूक्ष्मोक्षिपा कर्तव्या, अहा-
लक्षापनद्वारेण तथाविष्वविनेयोपवारस्य प्रन्थकृता चिर्वार्पितत्वात् ।
कृत प्रसङ्गेन । इति गायार्थः ॥ ४८ ॥

विचिकित्सास्थाने पाढान्तरेण प्राकृतत्वाद्यान्तरेषु वाऽन्य-
याएत्यनामाह—

१ “नरान्नाऽन्यर्थे” अ । २ “ उमवद् ” अ ।

विद्युच्छ ति च गरहा, सा पुण आहारमोयमसिल्याई ।
संका दुषिहा देसे, सञ्जन्मि य तत्थिमा देसे ॥ ४६ ॥

" विड " गाढा व्याख्या—' विद्युच्छ ति च ' इति विद्वांमः—साध्यः तेषां कुल्ला—निन्दा विद्युत्कुल्ला ' इति च ' इति प्रकाशन्तरसूचनम् । तत्र कुल्लार्थमाद—गर्हयं ' गर्ह ' कुल्लाउत्र, ' मा पुनः ' गर्हां तु किञ्चित् ? इत्याद—' आहारमोकाङ्गलानार्शानि ' आहारः—पात्रादिभोजनरूपः, मोकः—कायिकल्पापारो यतिजनप्रतीतप्रक्रियया, मकारस्तु प्राचुनालुरोधान, अस्तनानं—मर्वदा देवमलाङ्गालनस्तप्तम्, ' आदिशब्दान्दोन्नादि च शुगिजनोचितमितपार्नीयादिना; कथिददृशान्वपरमार्थत्वेन शिष्टमन्तरशीचल्यवद्यागर्तीतिशुचिषोडताप्रोक्ष वाऽऽग्नार्थशिविषयां गर्हां फ्रयेतीत्यर्थः । मांप्रतं शङ्खाभेदानाह—' नङ्खा ' इत्यादि । ' शङ्खा ' उग्रस्यरूपा ' शिरिधा ' द्विप्रकारा, कथम ? ' देशो ' प्रतिनियनविषया, ' नवमिश्र ' निःशेषविषया च । तत्र ' इयं ' वद्यमाणा देशो । इति गायार्थः ॥ ४६ ॥

तामेवोदाहरणेऽर्थनाकि—

तुङ्गे जीवते कह, एगे भव्याज्वरं अभव्य ति ।

अहवेगारणपून्म, खेतपएसे कहं अब्जो ॥ ५० ॥

" तुङ्गे " गाढा व्याख्या—' तुङ्गे ' नमाने ' जीवते ' उपयोगलक्षणत्वेन ' एके ' केचिद् अपभादयः ' भव्याः ' मुक्तिगामिनः, ' अपरे ' अन्येऽङ्गारमर्दकादयः ' अभव्याः ' सदा भवावस्थिताः; नमाने हि जीवते कि निवन्धनसेपामनादिभव्यत्वं अन्येषां त्वभव्यत्वम् ?, प्रतिनियनम्ब्रह्मतुनिर्मितं हि दार्यादेः प्रतिमाद्योग्यत्वा-

योग्यत्वं इष्टमिति इत्यम् । इदं चैव नास्त्येव वस्तुतः शक्त्वा कारणं
यत स्वेतुपरम्पराप्रापितमेव तेषां तत्त्वम्, न हि भावा प्रतिनिय
वस्तुपरम्पराप्रापित प्रतिनियतमात्मरूपमापन्ना पर्यनुयोगाद्वां भव-
न्नित । तथा तुल्ये वस्तुत्वे मूर्ता परमाणुप्रभूत्वं अमूर्ता आनादय
इति कोऽत्र पर्यनुयुज्यताम् ? वस्तुस्वभावत्वादस्य । उद्गुक्तम्—
“ अग्निर्दृहति नाकाशं कोऽत्र पर्यनुयुज्यताम् । ” इत्यादि । उदा-
द्धरणान्तरमाह—‘ अथवा ’ इति प्रकाशान्तरद्योतक , ‘ एकाणुपूर्णे’
एकपरमाणुपूरिते ‘ षेषप्रदेशे ’ आकाशनिर्विभागभागलब्धये
‘ कथं ’ केनप्रकारेण ‘ अन्य ’ द्वितीयादिः परमाणुरिति प्रकृतम्,
अवगाहते इति क्रिया तृत्तरगाथादां वदति । इति गाथार्थः ॥५०॥

ओगाहृ तत्त्वेव उ, न य परमाणुण लहुयरत्तं पि ।

न य अन्नोन्नपवेसो, ता कहमेवं घडिज्ञ चि ॥ ५१ ॥

“ ओगाहृ ” गाहा ल्याख्या—‘ अवगाहते ’ अयति
घुते मार्त्तिर्थं, ‘ तत्रैव ’ तस्मिन्नेव प्रदेशे, ‘ तु ’ विशेषणे, अमा-
वपि सर्वव्यापितया तज्जावतिष्ठत इति विशिनष्टि । अथ परमाणुना-
मपि पूर्वरूपाङ्गभुवरत्वापत्त्वाऽयमर्थं सभविष्यतीत्याराहुयाद—
‘ न च ’ इत्यादि । ‘ न च ’ नैव परमाणुना लभुतरत्वम् येन
यद्योऽपि तत्रैव मायुरिलाभिप्राप्त , अपिशन्दाद् पृष्ठचरत्वमपि नास्ति ।
अप्यान्योऽयनुपवेशाद्युनामेवमेवत्, वदपि नास्तीत्याद—‘ न च ’
नैव ‘ अन्योन्यप्रवेशः ’ परमाणुषो परमाणवन्तरेऽन्तर्भावं इत्यर्थः ।
निगमयति—‘ वत् ’ तस्मात् कथं ‘ एतत् ’ वक्ता ‘ घटेत् ’ युज्येत् ।
“ लिङ्गो अम् ” इति लिङ्गो ज्ञानदेश । ‘ इति ’ देती, अस्मान्

उदितहेतोः । कथमेतत् ? इत्येवंरूपा वा देशशङ्का । यदि हि प्रदेशो निर्विभागः [भागः] परमाणुनां च लघुतरत्वं अन्योन्यानुप्रवेशश्च न संभवति अतः कथमेकपरमाणवाकान्त एव प्रदेशोऽनन्तानां तेषां तत्रैवावस्थानम् ?, लोकाकाशप्रदेशोभ्योऽनन्तगुणत्वात्परमाणुनाम् । यदुक्तम्—“ धन्माधन्मपण्सा, तुला परमाणवो अण्टगुणा । ” तावन्तश्च लोकाकाशप्रदेशा इत्यवश्यमनन्तानामेककश आकाशदेशोऽवस्थितिरम्बुपगन्तव्या । न च परमाणुभिर्विभागेन प्रदेशपूरणम्, प्रदेशस्य सविभागत्वप्रसङ्गादिति । संभविनी इयं देशशङ्का । अत्र चैव परिहारो द्रष्टव्यः—इह हि यद्यपि परमाणुनां लघुतरत्वमन्योन्यानुप्रवेशो वा नास्ति तथापि परिणामान्तरापत्तिर्भवत्येव, तेनैकाणुपूर्णेऽपि प्रदेशो परमाणवन्तरावगाहो न दुष्यति; न चेयमेव लघुतरत्वापत्तिः नत्परिणामान्तरत्वमिति वक्तव्यम्, यतो निर्विभागत्वमुद्घन्नेवासौ परिणतिविशेषं प्रतिपद्यते । न हि सकुपरमाणवो जलेनाद्रीकृताः परिणामान्तरमापद्यमाना तिर्विभागरूपमात्मरूपं मुद्घन्ति, तौल्यादिनाऽपि पूर्वरूपसंवाददर्शनात्, अथ चावगाहान्तरं प्रतिपद्यन्ते । न चात्रापि परमाणुनामन्योन्यानुप्रवेश इति वक्तुं युक्तम्, एवं द्यपरापराणुप्रवेशसंभवेनाराणुनामल्पत्वेन तौल्यादितत्त्वव्यत्ययोऽपि तेषां स्यात् । न चासौ परिणामान्तरापत्तिमात्रेण लक्ष्यते, दृश्यते चैकप्रदीपप्रभापरमाणुपरिपूरितेऽप्यपवरकाभ्यन्तरेऽपरप्रदीपप्रभापरमाणुनामवस्थितिः । न चात्रापरपरमाणुनामामलकफ्लपूर्णघट इव जलादेरन्तरालावस्थानेन तथाप्र-

तिमामनमिति वाचन्त्यम् , तरेशाप्यामनेन दर्शनात् ; म च हेऽनुप-
पत्तं नाम । इति गायत्रामात्रार्थः ॥ ५१ ॥

मर्वराष्ट्रोशराहरणमात् —

सर्वे द्रुधालसंगं , गायिपिठगं पगयमायद्वं जं ।

एवं पागपपुरिमोहे कायियं भा न होऽजा ति ॥ ५२ ॥

“ सर्वे ” गाहा उपास्य—‘ मर्वस्तिमन् ’ सर्वदिवया रा-
हेत्यर्थ । ‘ द्वादशाह । भाषाहदित्य । गायिपिटकं ’ गणधरसर्व-
स्वभूतं लोकोपरभूतमित्यर्थः, ‘ प्राहृतमायाकद्वं ’ इति प्राहृतमाया-
दि किल विभूतोभुवा नायिगानेन शिष्टाभीष्टा, प्रतिनियताशतावला-
वलादिवचनयोग्या, नहि सया प्रायरो विद्वांसः प्रगल्मास्तत्त्वमभि-
ष्यति, तया वद्यं-पथितम् । अत्र च “ अदातो यथादिषु ” इति
प्राहृताकारस्त्राऽद्वैतेषाः, “ दत्तदीर्घं मित्यः ” इति भागाकार्ह-
स्वत्यम् । प्राहृतमायाकद्वं ‘ यत् ’ यस्मान् कारणात् गायिपिटकं
वस्मान् ‘ प्राहृतपुरुषे ’ इति इतरं नैर्यात्मर्त्तिर्भिरेव ‘ प्रकल्पितं ’
पर्वित्यम्, ‘ भा न ’ इति सरायवचनम्, ‘ भवेत् ’ स्यान् । इतमन्त-
र्वत्यम्—भाया दि किल केषाभिन्मतेन पद् प्रसिद्धा । यदुपम्—
“ संस्कृतमाहृतमायाधपिशाचमायाध्य सूरमेनी च । पष्ठोऽव्र भूरि-
भेदो देशविरोपादपञ्चरा ॥ १ ॥ ” अपरेषा तु संस्कृताब्तिरिक्ता
भाया शाकृता, अपञ्चराय रुदा । तत्र च किल संस्कृता भाया पाणि
न्यादिराज्ञानुरागासनप्रतिपादितप्रतिनियतप्रयोगसम्भूता स्फुटपदार्थप्र-
विपादनप्रत्यला सकलरिटाभीष्टा विशिष्टा षकु युक्ता । प्राहृता

तु विश्वतोमुखा प्रायोऽनियतलक्षणा प्राकृतपुरुपाणामपि प्रयोगयो-
ग्या, तद्दूरणे न कश्चिद्वृक्त्वाद्यतिशय आत्मनो ज्ञापितो भवति ।
गणिपिटकं तु प्रायस्तदन्तःपात्वर्धमागधिकाभिधानया भाषया निव-
द्धम्, अतः कादाचित्कत्वशक्तिवियुक्तेरेव केश्चिर्चित्तभिति उदुक्तः
सर्वोऽर्थर्थः संशीतिविषय इति मिथ्यात्वनिवन्धना संभविनी सर्व-
शङ्खा । अस्याश्रेवमपनयनं विधेयम्—इह हि यद्यपि सकलोपका-
र्यवालावलाद्युपकारकरणप्रवर्णेणाघरस्तत् प्राकृतभाषया निवध्यते,
उदुक्तम्—“ वालब्रीमन्दभूर्द्वाणां, नृणां चारित्रकाह्लिणाम् । उप-
काराय तत्त्वज्ञैः, सिद्धान्तः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥ तथाऽपि विशि-
ष्टानन्यसाधारणाल्पप्रन्थत्वादिगुणगणयोगादगर्हितगरिमैवतत् । त-
दुक्तम्—अप्पगंधमहत्यं, वत्तीसा दोसविराहित्र्यं जं च । लक्ष-
णजुत्तं सुत्तं, अद्वहि अ गुणेहिं उच्चेयं ॥ २ ॥ ” द्वात्रिशहोपा-
स्तु—“ अलिश्रमुवधायजणयं, अवत्वगनिरत्यगं छुलं दुहिलं ।
निस्सारमहिअमूणं, पुणरुत्तं वाह्यमजुत्तं ॥ ३ ॥ ” इत्यादयः ।
अष्टौ गुणाः—“ निहोसं सारवंतं च, हेऽजुत्तमलंकित्र्यं । उवणीयं
सोवयारं च, मियं महुरमेव य ॥ ४ ॥ ” तथा—“ स्फुटमुपगत-
प्रामाण्यं स्वैरमन्यसमैर्गुणेणादितुरुदितं सर्वज्ञत्वं प्रकाशयदङ्गसा ।
अपरवच्चसामप्रामाण्यं प्रशासदलन्तराभिति जिनवचो लक्ष्यं साक्षा-
त्परीक्ष्य विचक्षणैः ॥ ५ ॥ यदपि च भवेदल्पप्रन्थं तथाऽपि महा-
र्थेकं, करणुणमितैर्दोषैस्त्यकं गुणैर्युतमष्टभिः । तदपि च परं सद्मै-

१ “ मूढ ” च । २ “ स्वृतः ” च ।

तात्त्र ग्रन्थीगमयतः परं, प्रथिनामकवाक्यावैरेच तु नीर्विद्यस्तिष्ठत् ॥१॥
असट्टरागुरुं वामालालापद्म एष मिति, तदग्नियमपि शीतार्थक्षप्र-
त्यग्निति भित्तम् । तदपि ए परं ग्यात्रा गारपत्यः पुरामर्तं, ददति-
लभिह प्राप्तं इव ग्रन्थीगमयाभिन्नम् ॥२॥ " तथा सक्षमित्तिष्ठत्समवद-
गित्तुरुक्षपादिभिर्भेदमेव निर्यन्तिम्, तदूच्य —“इह समु इव शुद्ध-
मिटा शुपेरवर्षार्थते, सक्षमित्तमयेऽद्येऽद्येऽदेः परं परिवर्षवे ।
परम्परनां ग्रामस्थापः प्रतीतिपद गताभिति त्रिवर्मते व्यक्ता वदो
गम्भान्) ग्रामाद्युचिनिष्ठिति ॥ ३ ॥ यदपि ए क्षमालग्नितिभि-
त्तविग दिल व्यल्लयने, तदस्तित्तविदः भूयाणन्तरगंतं हजु सर्वेऽग् ।
इति निरित्य रुन राजाकारप्रभव भयेनदपरम्भिति प्राप्तः प्राप्तं परं
तत एव तद् ॥ ४ ॥ " तथा—“ गुनिउणमपादनिइत्यं, भूमादि-
च भूयभाषणमणाप । अभिगमनगित्तमहर्थं, महागुभाषं गदा
विमय ॥ ५ ॥ " इत्यादि । विशतोमुखत्य गनियतत्तत्त्वार्थं ए
वचित्तमासृतेऽपि तुरुवम्, अत परप्रतीतिप्रथलं भाष्टतं प्रयोकुं तुरु-
मेवेति तोत्तराहुषधाराः । इति गायार्थः ॥ ५२ ॥

सामुद्रमणि देशगर्वविरयो द्विषामाह—

कंता देसे एगं, कुवित्यमपमिन्थर जाहेत्यं पि ।

मणिपमहिसादृक्यगुक्यकर्त्ता समग्रमोक्षरार्द्ध ॥ ५३ ॥

“ कांग ” गाहा व्यापा—‘ पाहा ’ कार्यतिपादिवस्य-
रूपा ‘ देरो ’ देशविषया हरयंत इति मन्त्रते । ‘ चुकार्यिकरं ’
सौख्यादिदर्शनं ‘ इच्छदति ’ अभिज्ञाति, सो लाङ्गवया मन्यव इत्य-
रं । यथा मन्यते व्याऽऽह—‘ यथा ’ इति प्रकारवचनः, यथा

‘ अत्र ’ सौनातादिदर्शने ‘ भणितं ’ अभिहितम् । किम् ? ‘ अहिंसादुष्कृतसुकृतफलम् ’ इति, आहिंसा—प्राणिपीडापरिहारलक्षणा, उपलक्षणेन च सत्यादिपरिग्रहः, यद्वाऽहिंसा ब्रतवैतिस्पत्वेनाशेप-ब्रतस्याहिंसैवैकं ब्रतम्; दुष्कृतं—प्राणव्यपरोपणादि, सुकृतं-ध्यानाध्ययनदानादि, तस्य प्रतिपेधविधिरूपहिंसाऽध्ययनाद्यात्मकस्य सुकृतस्य दुष्कृतस्य च फलं—कार्यं ‘ स्वर्गमोक्षादि ’ त्रिविष्टपापवर्ग-सुखप्रभृतीत्यर्थः, आदिशब्दस्य यथायोगं योगाद् दुष्कृतफलं नरकाद्यपि । अत्रापि किल सांख्यादिदर्शने सुकृतदुष्कृतफलमाभिहितमेवेति इदमपि न क्षेपार्हमिति देशकाङ्क्षा । इति गाथाऽङ्गद्यार्थः ॥५३॥

सब्वे सब्वमयाद्य, कंखाद् जहमणियकारणेहितो ।
संकाए पेयपार्ह, कंखाए अमच्चरायाणो ॥ ५४ ॥

“ सब्वे ” गाहा व्याख्या—‘ सर्वस्मिन् ’ सर्वविषया काहेति प्रकृतम्, ‘ सर्वमतानि ’ सर्वदर्शनानि जैमिनिकण्ठभक्षाङ्गपादशाक्यकपिलादिप्रतिवद्वानि, किम् ? ‘ काङ्क्षते ’ मोक्षाङ्गतयाऽङ्गीकरोतीत्यर्थः । ‘ यथाभणितकारणेभ्यः ’ प्राक् प्रदर्शितसुकृतफलाभिधानादिभ्यः, “ भ्यसञ्च हितो सुन्तो ” इति पञ्चमीभ्यसो हितो-आदेशः । ऐहिकप्रत्यपायप्रत्यवत्त्वमपि शङ्काकाङ्क्षयोराविष्कुर्वन्नुदाहरणे आह—‘ संका ’ इत्यादि गाथार्थम् । शङ्कायां पेयापायिनीं कुमारकाङ्क्षादाहरणमिति गम्यते । काङ्क्षायाममात्यराजानाङ्क्षादाहरणम् । इति गाथाऽङ्गरार्थः ॥ ५४ ॥

१ “ शुतिभूत्वेनाशेपवरप्राप्तस्य ” थ ।

भाषार्थसु कथानकगम्य , ते चेते—

“ जहा एगम्मि नयरे एगस्म सेहिस्स दोरिण पुचा लेह-
मालाए पदाति । सिणेहा य से माया मा कोई पेनिष्ठही । अप्पसारि-
ए महेहाकरि ओमहि पेव देह । तत्य परिमुजमाणाण चेव एगो
चितेइ, नूण मनिष्ठयाओ ग्याओ । तस्म सकाण चेव माणसदु-
क्षयपुव्वग सारीर ति बगुलीयाही जाओ मओ आ । इह्लोगभो-
गाण अणाभागी जाओ । अवरे न माया अहिर्व चितेइ ति नि-
स्सकिओ पढिउमारडो । परिणया पेजा, निशेण य गाहिओ वि
आकलावो । इह्लोगभोगाण आभागी जाओ ति ॥ १ ॥ ”

यथाऽसाधविषयविषया राङ्गा कुर्वन्नेहिकापाय प्राप, अविषय
विषयता चात्र राङ्गाया सपल्नीमातुरापि व्यक्तस्तेहकायोपलम्भेन
सथाविष्यराङ्गाया वस्तुतो निर्विषयत्वात् तथा जिनमतगता राङ्गा
कुर्वन्नेकपारत्रिकापायपद स्यात् । लदुहम्— ‘ विमलमपि हि
चेत राङ्गया पक्षिल स्यात्, पय इव च पयोधे कर्देमोहामयोगात् ।
तदनु च जिनवाक्ये प्रत्यय स्यादगाढ़, स च खलु परिपन्थी
वस्त्वहट्टेरनिष्ठ ॥ १ ॥ ’ इत्यादि । तथा—

रुया कुमारामओ य आसेणापहरिआ अहावि पविहा ।
छुदावरद्दा वणपलाणि खायति । पहिनियत्ताण च राया चितेइ,
लहुअपूयलगमाईणि सब्बाणि चकखामि । आगया दो वि जणा ।
रणण सुआरा भणिआ, ज सोए पयरइ त सब्ब रधेह ति । वोहि
र्थेता उषद्वाविअ च रणणो । सो राया पेन्द्राऽविहृत करेइ । क-

प्पद्विया वलिएहि धाहिज्जंति, एवं मिट्टस्स अवगासो होहिइ । कण्ठुंडगमंडगाईणि वि खाइयाणि, तेहि सूलेण मओ । अमश्वेण युण वमणविरेयणाणि कयाणि, आभागी भोगाणं जाओ ” त्ति ॥

एवमिहाप्यपरनिरपेक्षैकनयमतमात्रनिर्मितकुर्तीर्थदर्शनानि काहुमाणः तेषामपरापरप्रतिक्षेपद्वारेण प्रायः प्रवृत्तेः सर्वत्रानाश्वासः, सर्वनयमतव्यवस्थितवस्तुतत्त्वानविगतेरनेकासुप्मिकापायभाग् भवति । तदुच्यते—“ निखिलमखिलैः सम्यग्दृच्छं नयैर्न किलैकशो, यदिति वहुधा वोधाध्वानस्त्वया प्रथिताः प्रभो ! । तदिति कुटशो व्याचक्रोशन्त्यनेकपथरिथता, असकलहशो हस्तिन्यन्धा यथा किल कुर्वते ॥ १ ॥ ” इति गाथार्थः ॥ ५४ ॥

विचिकित्सामपि प्रागुकां द्विधाऽऽह—

विचिगिच्छ देस एगं, चिह्नंदणनियमपोसहाईयं ।

सफलं विफलं व होज्ज, न नज्जए सब्ब सव्वाणि ॥ ५५ ॥

“ विचिगिच्छ ” गाहा व्याख्या—‘ विचिकित्सा ’ उदितस्वरूपा, हस्तत्वं तु च्छन्दोभङ्गभयात् । ‘ देशो ’ देशाविषया यथा—‘ एकं ’ किञ्चित् चैत्यवन्दननियमपौपधादिकं अनुष्ठानं सफलं विफलं वा भवेत् न ज्ञायते इति विचिकित्सर्तीति योगः । तत्र नियमाः—विविधाभिप्रहविशेषाः अणुत्रतादिरूपा वा, पौपधं-शिक्षाब्रतान्तःपाति, आदिशब्दादर्शनप्रतिमादिपरिग्रहः । तदेषां चैत्यवन्दनादीनां मध्येऽन्यतराद्विचिकित्सते, यथा ‘ सफलं ’ स्व-

१ “ हृष्णं ” व । २ “ प्रागुदितां ” व ।

गांदिरकृतहेतुः ' दिग्भृतं ' तद्विद्यते चायक्तेताकृतमात्रवेद या विचिकित्सा । ' सर्वरिमन् ' मर्त्यविषया विचिकित्सेति प्रहुतम् । इति-
पा १ ' मर्त्याणि ' इति सहजान्वेत चेत्यवन्दनादिभिर्यतु उत्तानी
विचिकित्सति, यथा न रायवे सर्वस्याह चै पदन्दनादेहगमप्राप्त-
प्रनिहितकृतस्यास्माकं किं कृतमरित १ उत्त नौ । इति गच्छार्थः ॥५५॥

सत्यपि निःशब्दिते जीवात्यरित्वे विचिकित्सानिश्चत्तम-
भिप्राप्तमाद् ।

पुष्पपूरिसाज्जहविष्य (ज्ञानोदय), मागवराघट्टतेषु करुणोगो
मम्देषु विरसंप्रवणविरहमो न तद तेसि कर्त्तुः ॥ ५६ ॥

" पुष्पपूरिमा " गहा डग्गवा—' पूर्वपुरुष ' कामरे-
धाद्य ' यज्ञोदितमार्गवद् । अग्नश्चिदित्यवर्त्तनिष्ठत्वं पादिगुणा-
मेविन इत्यर्थः, ' यज्ञोदितमार्गवद् । य ' सर्वश्चौपिलाचरण्यवर-
यणा इति भाव, अत ' तेतु ' तद्विद्य ' घटते ' युग्मते ' क-
लयोग ' अग्नप्राप्तिदित्यविष्टवद्दोलनादेहत्वादिवर्त्तकिष्टका-
र्यसंकल्प । ' अस्मामु ' अस्त्रद्विरप्ये, गुरुशङ्खो भिन्नदात्र गतायान्,
" क " अदिसूक्ष्मेण च तलोये सन्धौ चैवं भवति । ' धृतिसंहन-
नविरहत ' तथाविधानुप्राप्तिनिमित्तवनुराक्यभावादित्यर्थः ।
' न ' इति निषेधे । ' तथा ' तेन पूर्वपुरुषवतीतप्रकारेण ' तेषां '
चेत्यवन्दनादीना धर्मज्यापाराणा ' कलं ' साध्यकार्यं स्वर्गादिनेति
संकल्प । एवंविधा विचिकित्सा यस्तुतो मिथ्यात्वनिवन्धनैव, यतो
नाहि संभयोऽस्या विषयं विना । तथादि—यथा पूर्वपुरुषाणां धृ-
त्यादियुजां सम्यक्त्वादेः स्वर्गादि कलं तपेदान्तिनामसि अप-

न्यादिभेदं तदेव । यत आगमः—“ अविराहिप्रसामरणस्स मा-
हुणो सावगस्स य जहुणो । सोहम्मे उवाच्यो, भणिश्चो तेलो-
फदंसीदि ॥ १ ॥ ” न चेदानीमागममनुसरतामपि सम्यक्त्याय-
संभवः । तदुक्तम्—“ दुष्प्रसहंतं चरणं, भणिश्चं जं भगवया इहं
खेचे । आणाजुताणमिणं, न द्योइ अहुण ति यामोहो ॥ १ ॥ ”
तथा—“ जा संजमया जीवेषु ताव भूला य उत्तरगुणा य ।
इत्तरिथ्येऽसंजनम, निगंथ वडसा य पठिसेवा ॥ २ ॥ ” तदेवं
तीर्थवसानमयानुगार्मानि सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्राणि, तद्वतां
च कालादपेक्षमनुष्टानमवश्यं मुक्तिकलबद्वे । अत एवैनं कालमपेक्ष्य
संभवयतनागुणेन संग्रहमाराधयतां साधूनां हीलाविधायिनामागमे
महाननश्चोऽभिहितः । यदुक्तम्—“ धीरपुरिसपरिहाणि, णाऊरुणं
नंदधन्मिथा केऽ । हीलेंति विद्रमाणं, संविनगजणं अद्वुद्धीथा
॥ १ ॥ ” तेपां चेदं फलम्—“ संतगुणव्यायणा खलु, परपरि-
वाश्रो अ द्योइ अलिश्चं च । धम्मे अ अवहुमाणो, साहुपश्चोसे
अ संसारो ॥ २ ॥ ” इत्यादि । तस्मात्संहननाद्यनुरूपं धर्मं परा-
क्रामतामवश्यं यथाभिहितं फलमस्तीति निर्विचिकित्सेन भाव्यम् ।
इति गायार्थः ॥ ५६ ॥

सांप्रतं द्विल्पाऽपि विचिकित्सैहिकस्याव्यपायस्य निदानम्,
एतद् दृष्टान्तेन दर्शयति—

विचिगिच्छाए विजासाहंताऽसङ्घचोर दिङ्गंतो ।

विउगुच्छाए पञ्चतवासिणो सङ्घगस्स मुया ॥ ५७ ॥

“ विचिगिच्छा ” गाहा व्याख्या—‘ विचिकित्सायाँ ,

उक्तस्त्रुत्याया ' विद्यामाधयदशाद्यन्तचौरटष्टान्त ' इति विशां साधयन विद्यामाधयन्ति शत्रन्तेन समामो गमकत्वा । तदुक्तम्— “ द्रव्यसज्जायकात्ताभ्या, समासो न निपिष्यते । ” प्राहुतेन वा समाप्त । ततः विद्यासाधयदशाऽसावशाद्येति विद्यामाधयद शाद्य स च चौरथेति चार्थ, तो ' दृष्टान्त ' उदाहरणम् । ' विद्युगुप्त्याया ' अभिहितस्त्रुत्याया ' प्रत्यन्तवासिन ' तथाविद्यसाध्यापातरहेतप्राभवासिन ' शावकस्य ' शाद्यस्य ' मुता ' दुहिता । इति गाथाऽक्षरार्थ । भावार्थस्तु कथानकगम्य । ते चैते कथानके—

“ सावयनदीसरबरदीवगमण्ड दिव्यगधाण देवसर्व सणमित्तस्स पुन्द्रण, विज्ञापयाण, साहृण, मसाणे चउपायं सिक्कं हेद्वा इगाला राइरो आ सूलो । अद्वसयवारा परिजवेता पाओ सिक्कगम्म छिख्वाई । एव वितिओ तइअौ । चउत्ये चिक्करणे आगा नेण बशइ । तेण सा विज्ञा गदिअ । कालचउदसियति साहेइ । मसाणे चोरो च नागरारक्तगोहिं परद्वो परिदम्ममाणो तत्येव अइगओ । ताहे चेहेउ मसाण ठिअ पभाण घेप्पिहिइ ति । सो भमतो विज्ञासाहग पैच्छइ । तेण पुच्छओ सो भणइ, विज्ञ साहेमि । चोरो भणइ, केण दिलणा ? । सो भणइ, भावगेण । चोरेण भणियं, इम दब्ब गेहद्वाहि विज्ञ देहि । सो सहूँ यिगिल्लइ ति सिग्मेज्जा न व ति तेण दिलणा । चोरो चितेइ, सावओ बीडिअग वि पीड नैच्छइ, सचमेय, सो साहेउमारद्वो । इवरो सहोद्रो गदिओ । तेणागासगएण लोगो भोमिओ, ताहे सो मुझो, ते वि सहुगा जाय ति ॥ ”

एवमिहापि निजानुष्ठानफलं विचिकित्समानोऽसुमान् आमु-
द्धिमकापायभाग् भवति । तदुक्तम्—“ तत्त्वे मूढ ! मनागपि अ-
(प्य)रुचिर्जिनहप्रभावविपयेयम् । विद्यागतेव तत्साधकस्य तत्क-
लविधाताय ॥ १ ॥ ” इति । विष्वज्जुगुप्सायां श्रावकसुता च—

एगो सद्गु पञ्चंते परिवसइ । तस्स धूआविवाहे कह वि साहु-
णो आगया । सा पिउणा भणिआ, पुत्तिग ! पडिलाहेहि साहु-
णो । सा मंडिअपसाहिआ पडिलाहेइ, साहूणं जल्लगंधो तीए
आगओ । सा चिंतेइ, अहो ! अणवज्जो साहूण धम्मो देसिओ ।
जह पुण फासुपण खहाएज्जा को दोसो होज्जा ? । सा तस्स ढ्वाण-
स्स अणालोइयपडिकंता कालं किच्चा रायगिहे गणियाए पोहै आ-
या गव्यभगया चेव अरडं जणेइ । गद्भपाडणेहिं पि न पडइ ।
जाया समाणी उडिकआ । सा य गंधेण तं चणं वासेइ । सेणिओ
तेण पएसेण निगच्छइ सामिणो वंदओ, सो खंधावारो तीए गंधम-
सहंतो परम्मुहो भग्गो । रणण पुच्छिअं, किं एयं ? । तेण क-
हिअं, दारियाए गंधो । गंतूण दिट्ठा । भणइ, एसेव पठमपुच्छ-
त्ति । गओ वंदित्ता पुच्छइ । तओ भगवया तीए उड्हाणपारिया-
वणा कहिआ । भणइ राया, काहिं एसा पञ्चणुभविस्सइ सुहं वा
दुहं वा ? । सामी भणइ, एण कालेण वेइयं । सा ते चेव भज्जा-
भविस्सइ, अग्गमहिसी अट्ट संवच्छराणि । जा य तुडमं रममा-
णस्स पट्टीए हंसोलीलं काहिइ तं जारेज्जासि । वंदित्ता गओ ।
सा य अवगयगंधा आभीरेण गहिआ, संवद्गुआ जोअणत्थ;
जाया । कोमुहवारं मायाए समं आगया । अभओ सेणिओ अ-

पच्छारणा कोमुइवारं पेच्छांति । तीसे शारिआए अंगपासेण सेणि-
ओ अग्नोबवण्णो नाममुदं दासिआए तीए बंधइ । अभयस्त क-
हिअं । नाममुदा हारिआ मगाहि । तेण मणुस्ता दरोहि बद्धेहि
ठाविआ । एकेकं मागुस पलोएज्जणं निलिज्जइ । मा हारिआ
दिहा, चोरि ति गहिआ परिणीआ । अरण्या य बन्मद्देण रम-
ति शायाण शायियाओ पोत्तेण शादिति, इयरी पोत्तं देतीया चेव
विलगा, रण्णा सरियं मुक्ता य, पञ्चदया " ॥ ५७ ॥

अधुनाऽभूदृष्टिरूप दर्शनाच्चारमाह—

इङ्गीओ षेगविहा, विज्ञाजिण्या तद्वोमयाओ य ।
बैउच्चियलद्विक्या, नहगमण्याई य दहूणं ॥ ५८ ॥

पूर्यं च असण्याणाइवत्यपत्ताइएहि विविहेहि ।

परपासंडत्याख्यं, सकोलूयाइणं दहुं ॥ ५९ ॥

विजाईयगिहीणं, पासत्याद्य धावि दहूणं ।

जस्त न मुज्जहि दिही, अमूढिदिहि तर्यं चिति ॥ ६० ॥

“ इहीओ ” गाहा र्याहुया—‘ कही ’ विभूती बद्य-
माणरूपा रहा यस्य हाइर्ने मुघतेऽ(ति अ)भूदृष्टिं तकं झुवत इति
मांवन्धः । किनिया कही ? अनेव प्रकारा धहुविधा । नर्थवाह—
‘ विज्ञाजनिता ’ वरीकरणादिविद्यामम्पादिता, ‘ तपोमर्याश ’
विहुषोपवासादिप्रापिताशेत्यर्थः, ‘ वैकिगलविवक्तवाः ’ काञ्जनपद्मा-
दिनिर्माणरूपा, ‘ नभोगमनादिकाभ्र ’ आकाशगमनादिका ‘ हङ्गा ’
उपलभ्य । इति याथार्थः ॥ ५८ ॥ तथा—

“ पूर्यं ” गाहा व्याख्या—‘ पूजां ’ सपर्यां, चशब्दाः स-
वेऽन्ने समुच्चये, अशनपानाभ्यां—ओदनद्राक्षापानादिरूपाभ्याम्,
आदिशब्दात्खादिभस्वादिसाभ्याम्, तथा वस्त्रपात्राभ्यां प्रतीताभ्या-
म्, आदिशब्दादासनादिपरिग्रहः, सर्वेषां पदानां चार्थसमासेन नि-
देशः, तैः । ‘ विविधैः ’ अनेकप्रकारैः । केषाम् ? इत्याह—‘ पर-
पापण्डस्यानां ’ परपापण्डे—शाक्यादिलिङ्गे तिष्ठन्ति ये ते तथा ते-
पाम् । तथैवाह—‘ शाक्योल्कादीनां ’ वौद्धभौतप्रभृतीनां ‘ द्वष्टा ’
उपलभ्य । इति गाथार्थः ॥ ५६ ॥ तथा—

“ धिज्ञार्द्य ” गाहा व्याख्या—धिग्जातीयाः—द्विजातयः
त एव गृहिणः, अन्ये वा गृहिणो धार्मिकमन्यास्तेपाम्, तथा ‘ पा-
र्श्वसादीनां ’ प्रागभिहितस्वरूपाणामार्दतानामेव । वा—अपिशब्दौ
समुच्चये । यस्य ‘ न मुख्यते(ति) ’ न भ्रान्तिमुपयाति ‘ दृष्टिः ’
दर्शनममूढदृष्टिं ‘ तकं ’ एवंविधं ‘ द्रुवते ’ प्रतिपादयन्ति पूर्वा-
चायां । यो एनेकप्रकारैरपि मोक्षमार्गविगुणैर्विभूतिविशेषैः परपा-
पण्डादिगतैर्नावर्ज्यते तममूढदृष्टिमाहुः । इति गाथात्रयभावार्थः ॥ ६० ॥

उपद्युंहादर्शनाचारभाह—

खवणे वेयावच्चे, विणए सज्जायमाइउज्जुत्तं ।

जो तं पसंसए एस होइ उववृहणा नाम ॥ ६१ ॥

“ खवणे ” गाहा व्याख्या—‘ ज्ञपणं ’ अविकृष्टविकृष्टरूपं
घटाष्टमादि तत्र, ‘ वैयावृत्त्ये ’ व्यावृत्तभावलक्षणे आचार्यादिगते,
‘ विनये ’ अभ्युत्थानादिरूपे, स्वाध्याये—वाचनादौ, आदिशब्दाद-

न्यत्र च सापुकृत्ये चरणकरणहृषे उद्युक्तं—उद्योगवन्तं यस्तु 'प्ररां-
सति' स्तीति, 'एषा' इति कर्तुद्वारेण निर्दिष्टा प्रशंसाक्रिया भवति
'उपबृहणा नाम' उपबृहास्तपो दर्शनाचार । इति गायत्र्यः ॥६१॥

स्थिरीकरणदर्शनाचारमाह—

एएसुं चिय सुवणाइएसु सीयंतु चोयणा जा ड ।

बहुदोसे माणुस्से, मा सीय थिरीकरणमर्यः ॥ ६२ ॥

"एएसुं" गाहा व्याख्या—'एलेख्वेद' प्रागाधाकथितेषु/
'चपणादिषु' चपणवैयाकृत्यविनयस्वाध्यायादिषु 'सीदत' प्रमा-
धतः साभ्वादेऽरिति गम्यते, 'चोदना' प्रोत्साहना तपादिवश्चतन-
दिभिः प्रवर्तनेत्यर्थ, 'या तु' या पुनरेवंविद्या क्रिया तन् रितिर-
रणमिति योग । कथं 'चोदना' ? इत्याह—“बहुदोसे” इत्यादै,
बहुदो दोषा प्रस्तुतधर्मविज्ञभूता रोगादयो यस्मिंस्तत्त्वा तत्र, 'मा-
नुषे' मनुष्यस्त्वे 'मा सीद' मा प्रमादीः रितिरीकरण 'एन्तर'
प्रविष्टयै । इति गायत्र्यः ॥ ६२ ॥

वात्सल्यदर्शनाचारमाह—

साहम्मियवच्छङ्गं, आहाराद्दिँ हौद सञ्चत्य ।

आएसगुहगिलाखेतवस्तिपालाइसु विसेता ॥ ६३ ॥

"साहम्मिय" गाहा व्याख्या—पाठमिहृषा—सर्वर्णाणां
साध्यादीनां यथासंभवं वात्सल्यं—वात्सल्यमावलक्षणं साधमिकवात्स-
ल्यं 'आहारादिभि' भक्तपालवच्छशाप्रादिभि 'भवति' जायते
कर्तव्यमिति शेषः, 'सर्वत्र' सापुत्रों, विशेषमाह—'आदेशगुहज्ञा-

न तपस्विवालादिषु विशेषात् ॥ तत्र आदेशाः—प्राघूर्णकाः, गुरवः—
आचार्याः, ग्लानाः—रोगादिपीडिताः, तपस्विनः—विकृष्टपोयुक्ताः,
चालाः—चुल्काः, आदिशब्दाच्छैकमहोदरादिपरिव्रिहः, तेष्वादेशा-
दिषु ‘विशेषात्’ अतिशयेन वात्सल्यं कार्यम् । यदुक्तम्—
“ पाहुणविसेसदाणे, निजर कित्ति य इहर विवरीयं । ” इत्यादि ।
इति गाथार्थः ॥ ६३ ॥

सांप्रतं प्रभावनोच्यते, तत्र प्रकर्षेण भावना—जिनशासनस्य
स्वशक्त्या दीपनेत्यर्थः । नन्वेवमसौ जिनशासनस्य स्वमहिम्नैव
सिद्धा किं तत्रापरपुरुष्यापारः ? अत एवोच्यते—“ सकलवि-
षयज्ञानाधीनं प्रमाभिरवावितं, सकलममलं सत्संवादं वदन्निति सं-
पदा । भवति भगवन् ! सर्वज्ञत्वं सदाऽभिदधद् हृदं, जयति भवतः
सिद्धान्तोऽयं परैरपराजितः ॥ १ ॥ ” सत्यमित्यमिति हृदि निधायाह—

कामं सहावसिद्धं, तु पवयणं दिष्पए सर्यं चेव ।

तहवि य जो जेणऽहिओ, सो तेण पयासए तं तु ॥ ६४ ॥

“ कामं ” गाहा व्याख्या—‘ कामं ’ अनुभतमिदं ‘ स्व-
भावसिद्धं ’ निजप्रभावप्रतिष्ठितमित्यर्थः । ‘ तुः ’ अवधारणे, स्व-
भावसिद्धमेव, अतः ‘ दीप्यते ’ प्रकाशीभवति ‘ स्वयमेव ’ आ-
त्मनैव; तर्हि कथं प्रभावनाकरणम् ? इत्याह—‘ तथापि ’ यद्यपि
एवं ‘ यः ’ अवधिज्ञान्यादिः ‘ येन ’ अतिशयादिना ‘ अधिकः ’
अपरप्राणिभ्य उत्कलितः ‘ सः ’ अवधिज्ञान्यादिः ‘ तेन ’ आ-

१ तपोवन्तः ” अ । २ “ इत्यादीनि ” व ।

तमातिशयेन ' प्रकृष्टते ' प्रदीपयत्येव । ' तन् ' प्रवचनम्, ' दुः ' अवधारणे, प्रकाशत इत्यसात्परतो योजित एव । हृष्मन्त्र हृष्म—यथा पि जिनप्रवचनमनेकातिशयनिधानत्वेन प्रभावनाप्राप्तमेव सधापि यथा सत् तत्त्वेन भव्यानां मनसु विश्वास्यति तथा सम्यग्हृष्टिभिर्यति—सद्यम् । इति गाथार्थः ॥ ६४ ॥

अमूढटष्टयादादुवाहरणान्याद—

मुलसा अमूढदिद्वी, सेणिय उवृद्ध थिरीकरण साढो ।
वच्छ्वस्मिम् य वद्वरो, प्रभावगा अद्व पुण हुंति ॥ ६५ ॥

" मुलसा " गादा व्याख्या—मुलसाधाविवाऽमूढटष्टादु-
वाहरणम—यथाऽसावस्मट (ऽसावस्वट) परिश्राद्कृतविद्यानिमित्ता-
सुनमावैन सम्यग्हृष्टी मुमोह, एवममूढटष्टिना भाव्यम् । भेषिको
राजा उपृद्वायामुदाहरणम—यथाऽमौ किल सुरमायानिर्मितस्य शृण-
कस्य शुम्हदन्तादेप्रशसाद्वारेणोपवृंहा, चकार, यथा वा स एव
सम्यकस्वनिष्ठलत्वादी शब्देणोपवृहितः, एवं छपणादी साधूनामुप-
वृंहा विधेया । ' स्थिरीकरण साढ ' इति स्थिरीकरणे आर्यांशादा-
चार्यो ज्ञातम्—यथाऽसौ किल घर्मे चलाचलः मन् प्रवृत्त्या लित्यज्जुः
ज्ञुलकर्जीवदेवेन स्थिरीकृतः एवं स्थिरीकरणं कर्तव्यम् । ' वात्स-
ल्ये वैरः ' इति वात्सल्ये वैरस्वामी झावन्—यथाऽसौ अमण्डसंघं
दुर्भिज्ञोदधेविद्यानिर्मितपटपोतेनोत्तारण्यायोद्यतो दात्रलूनशिखेन श-
ख्यातरेणाभिहितः, यथा—' भगवन् ! भाग्यि साधर्मिकमेवावधार्यो-
क्तारयातो विषदः ' इति विज्ञप्त्य तमपि साधर्मिकवात्सल्यं चिकी-
रुंसायैवोत्तरितवान्, एवं साधर्मिकवात्सल्यं विधेयम् । एतत्संवद्द-

कथानकानि तु प्रायः प्रसिद्धत्वाद् ग्रन्थविसरभयाद्य न लिङ्घन्ते ।
 ‘प्रभावकाः’ प्रभावनायाः कर्तारः ‘अष्टौ’ वद्यमाणरूपाः,
 ‘पुनः’ भिन्नवाक्यतायाम्, प्रभावकाः पुनः इति द्रष्टव्यम् । ‘भ-
 वन्ति’ सन्ति । इति गाथार्थः ॥ ६५ ॥

साम्प्रतं प्रभावनायाः कर्तव्यतामागमादाविष्कुर्वन्नपरमपि त-
 त्सहचरिततया निर्दिष्टमाह—यद्वा यदार्थवैरः मूर्चं स्मरद्धिः भा-
 धर्मिकवात्सल्यमकारि तमाह—

साहस्मियवच्छल्लम्मि उज्जया उज्जया य सज्जाए ।

चरणकरणस्मि य तहा, तित्थस्स पभावणाए य ॥ ६६ ॥

“साहस्मिय” गाहा व्याख्या—‘साधर्मिकवात्सल्ये’
 कथितस्वरूपे ‘उवताः’ उद्योगवन्तः, ‘उद्यताश्च स्वाध्याये’
 [स्वाध्याये] चोवता इति द्रष्टव्यम्, “चरणकरणस्मि” त्ति
 चर्यत इति चरणं—व्रतादि, तदुक्तम्—“वय५ समणधम्म१० सं-
 जम१७, वेयावश्च१० च वंभगुत्तीओ६ । नाणाइतिगं३ तव१२
 कोहनिगहार्द४ चरणमेअं ॥ १ ॥” क्रियत इति करणम्—पिण्ड-
 विशुद्धयादि, तदुक्तम्—“पिण्डविसोही४ समिर्द५, भावण१२
 पाढिमा१२ य दंदियनिरोहो५ । पडिलेहण२५ गुत्तीओ३, अभि-
 गहाप४ चेव करणं तु ॥ २ ॥” तत्र । चशब्द उद्यतक्रियानुकर्प-
 णार्थः । ‘तथा’ आगमोक्तप्रकारेरण ‘तीर्थस्य प्रभावनायां’ उक्त-
 स्वरूपायाम । चशब्दः प्राग्वत् । सुसाधवो हि साधर्मिकवात्सल्या-
 दावुद्यता भवन्ति । इति गाथासमुदायार्थः ॥ ६६ ॥

प्रभावस्थानाद्युरिद्वाना—

मृसंसद्युपमकहिवारभायतियस्यगनेमिती ।

निआरायागवसम्या, य नियं प्रमादेति ॥ ६७ ॥

“ अहमेन ” गाहा व्याख्या—अतिरोपा—अपिद्वानाद्य त, सेवा शुद्धिर्यम्यामावदिरोर्पदि, भिसे वा परं कुडन्ती हरयो । पर्मधर्यी—पर्मधयालभियुक्, पारी—वाइलभिमान्, आवार्य—प्रायचनिक, सपक—विष्टुतप कर्ता, नैमित्तिक—मुनिभितातीता-दिनिमित्तयेदी, मर्वेषामतिरोपद्यर्थादिवशाना चार्घेन निर्देश । विशेष्युपलक्षणादिवायान, गवनगणममता—गविर्णापनिमहाजनादि-वहुमता, स्थानद्वयमिदमेक वा, ‘ द्रस्य दीर्घो मिष्य ’ इति पूर्वपद्मी-पत्त्वम् । ‘ च । ’ ममुषये । ‘ तीर्थं ’ प्रथमन स्वसमृद्धया ‘ प्रभाव चन्ति ’मध्यस्थप्राणिना वहुमानगोचरीकुर्वन्ति । इति गाथार्थं ॥ ६७ ॥

एव हेयहानद्वारेण सम्यक्त्वमभियायापुना विपिद्वारेण तदेवाह—
तत्त्वमहायं, मम्मतमसमग्रो न एषाम्भ ।

मिच्छत्तरुभोवसमा मुस्यमार्द उ होति ददं ॥ ६८ ॥

“ तत्त्वं ” गाहा व्याख्या—तत्त्वार्थानां-सर्वविदुपशिष्ठ-
नीवादिभाषाना भद्रान—एवमेवैतदिति प्रतीति । तत्त्वार्थमद्वान उन्
सम्यक्त्वम्, यन्द्वावक्षर्ममूलवयोर्देष्म् । इदमेवेदानीं कार्यभिक्षुगं-
म्यमेवाह—‘ असदूषह ’ अस्थाननिर्वन्धरूपो न ‘ एतास्मिन् ’
सम्यक्त्वे सति, ‘ मिष्यात्वस्योपरामान् ’ उत्तस्यरूपान्, उपलक्षण-
त्वावाहयोपरामात्तस्यात्म हेतो । ‘ शुश्रूषाद्य ’ वस्यमाणा गुणा

‘ भवन्ति ’ जायन्ते ‘ हृदं ’ अतिशयेन । एभिः सम्यक्त्वं व्यक्ती
भवति । इति गायार्थः ॥ ६८ ॥

शुश्रूपादिगुणानेवाह—

सुस्मूस धम्मराओ, गुरुदेवाणं जहासमाहीए ।

वेयावच्चे नियमो, वयपडिवत्तीऐ भयणा उ ॥ ६९ ॥

“ सुस्मूस ” गाहा व्याख्या—श्रोतुमिच्छा शुश्रूपा । इस्व-
त्वं तु प्राग्वत् । सद्वोधावन्धनिवन्धनधर्मशास्त्रगता परमशुश्रूपे-
त्वर्थः । तदुक्तम्—“ शुश्रूपा चेहायं, लिङ्गं खलु वर्णयन्ति विद्वांसः ।
तदभावेऽपि श्रावणमसिरावनिकूपखननसमम् ॥ १ ॥ शुश्रूपाऽपि
द्विविधा, परमेतरभेदतो वुच्चैरुक्ता । परमा ज्योपशमतः, परमाच्छ्रू-
णादिसिद्धिफला ॥ २ ॥ यूनो वैदग्ध्यवतः, कान्तायुक्तस्य कामि-
नोऽपि हृष्टम् । किञ्चरोयश्रावणादधिको धर्मश्रुतौ रागः ॥ ३ ॥ ”
इत्यादि । धर्मे—धर्मनिवन्धने सद्विष्टाने रागः—कान्तारोत्तीर्णजुत्त्वा-
मत्राद्विष्टाविःपूर्णाभिलापातिरिक्ता कर्तव्यताप्रीतिरित्यर्थः । ‘ गुरु-
देवानां ’ इति गुरवः—धर्मोपदेशका आचार्यादयः, देवाः—आरा-
ध्यतमा अर्हन्तः, गुरुपदपूर्वनिपातस्तु विवक्षया गुरुणां पूज्यतरत्व-
ख्यापनार्थः; न हि सदा गुरुपदेशं विना सर्वविदेवावगम इति हृ-
. दयम् । तेषां गुरुदेवानां ‘ यथासमाधि ’ स्वसमाधेरनतिक्रमेण,
प्राकृतत्वादसंख्यसमासादपि तृतीयाया अलुक्, समासाभावो वा ।
‘ वैयावृत्त्ये ’ तत्प्रतिपत्तिविश्रामणाभ्यर्चनादौ ‘ नियमः ’ अवश्य-
कर्तव्यताङ्गीकारः । ‘ ब्रतप्रतिपत्तौ ’ अगुव्रतादिग्रहणाङ्गीकारे ‘ भ-

जना' विन्द्यना, कदाचिद्गवत्यसौ च दाचिनोति । ' मुः ' पुनरयै ।
प्रतप्रतिपत्तौ पुनर्भर्जनेति इष्टव्यम् । इति गाथार्थः ॥ ६८ ॥

भजनाकारणमेवाह—

जे सा अहिगयराओ, कम्मखायोवसमओ न य तथो यि ।
होइ परिणाममेया, लाङुं ति तम्हा इहं मयणा ॥ ७० ॥

" जे सा " गाहा ल्याख्या—' यन् ' यमान् कारणान्
' सा ' प्रतप्रतिपत्तिः ' अधिकतएन् ' सम्यक्त्वसंप्राप्तिनिमित्तम्—
लादर्गलतएन् ' कर्मच्योपशमनः ' इति कर्मणा—चारित्रमोदनीय—
लादण्याना चायोपशमस्ततः, उपलादण्याच अस्योपशमान् चायाच ।
भ एव सम्यक्त्वलाभे किं न भवति ? इत्याह—' न च ' नेव
' तथो ' इति ' सरु ' कर्मच्योपशमः, तुशब्द पुनःशब्दायै, स
पुनरिति च इष्टव्यम्, ' भवति ' जायते ' परिणाममेदात् ' तथा—
भव्यत्वनिदानकर्मच्योपशमावन्ध्यनिवन्धनादात्माभवसायविशेषा—
दित्यर्थं, ' लघु ' महित्येव ' इति ' सम्यक्त्वयन्, ' तस्मान् '
तत कारणान् ' इह ' प्रतप्रतिपत्तौ भजना, शुभ्रूपादिषु तु निय-
म । इदमत्र भावना—यथापि कर्मप्रतिपत्तिमेवादेव सम्यक्त्वमुदोति,
तस्मिन्द्य व्रतप्रतिपत्तिमेवोपादेवत्तरामध्यवस्थालि तथाऽपि न यावत्या
कर्मस्थितौ सम्यक्त्वलाभः संपन्नस्तावस्यामेव प्रतप्रतिपत्तिरपि त-
त्ववो भवति । इति गाथार्थः ॥ ७० ॥

इदमेवाह—

सम्मा पोलेयपुद्दत्तेऽग्नेऽ कम्माण भावओ हुंति ।
वयपर्मिईण भयएणवतर्ददुल्लाणि नियमेण ॥ ७१ ॥

“ सम्मा ” नाहा व्याख्या—‘सम्म’ ति मूचनात् सूत्रमिति न्यायात्सम्यक्त्वात् प्राप्तात् सम्यक्त्वलाभकालसंभविकर्मस्थितेरिति हृदयम् । ‘पल्योपमपृथक्त्वे’ सिद्धान्तप्रसिद्धे । तदुक्तम्—“ एगाहिअवेहिअतेहिआए उक्षोस सत्तरत्ताणं । सम्मट्टं सन्निचिअं, भरिअं वालगगकोडीणं ॥ १ ॥ ” इत्यादि ॥ द्विप्रभृतिरानवभ्य इति पृथक्त्वपरिभाषा । तस्मिन् पल्योपमपृथक्त्वे ‘कर्मणां’ तदावारकाणां ‘अपगते’ योते वेदिते इत्यर्थः, ‘भावतः’ परमार्थ-नत्या, न तु वाद्यप्रवृत्तिमात्रमाश्रित्य, तथात्वेन मिथ्याद्वेषपि रजोहर्त्णादिधारणक्रियाया अपि संभवात् । यदुक्तम्—“ सञ्चजियाणं जम्हा, सुते गेवेजगेसु उववाओ । भणिओ जिणेहिं सो न य, लिंगं मोत्तुं जओ भणिअं ॥ २ ॥ जे दंसणवावरण, लिंगगहरणं करेति सामणे । तेसि पि अ उववाओ, उक्षोसो जाव गेवेज्ञा ॥ २ ॥ ” इत्यादि । ‘भवन्ति’ जायन्ते ‘ब्रतप्रभृतीनि’ अणुब्रतलाभादी-नीत्यर्थः । किंविधानि ? ‘भवार्णवतरण्डतुल्यानि’ संसाराकूपारोचारणे तरण्यादिकल्पानि ‘नियमेन’ अवश्यंतया । तदुक्तम्—“ सम्मत्तम्भि उ लद्वे, पलिअपुहुत्तेण सावओ हुज्ञा । चरणेवस-भवयाणं सागरसंखंतरा होति ॥ १ ॥ ” स च तथाविधः कर्म-स्थितिहासोऽनुक्रमवेदनाद्वा स्थाद् वीर्योळासविशेषात्करणान्तरप्रवृत्ते-रतिशीवकालेन वा । तदुक्तम्—“ एवं अपरिविहित, सम्मते देव-मणुअजम्भेसु । अन्नयसेदिवज्ञं, एगभवेणं च सञ्चाइ ॥ १ ॥ ”

१ “ अमेते ” अ । २ “ तदुक्तम् ” च ।

ज्ञानके त्रिविधं योगं शृतं कारितमनुभवं प्रत्याचरणाणस्यैकं एवागव-
फलाप्, सर्वप्रकारे प्रत्याक्ष्यात्त्वाद्विक्ल्यान्तराभावं इत्यर्थं । एष-
तरयत्रिवेश सत्ता त्रय एव भक्षविकल्पा भवन्ति, ते च द्वितीयवृत्तीय-
चतुर्थसत्त्वेषु द्रष्टव्या । त्रिक्विरीहि भक्षकरथाने नवं भक्षविक-
ल्पा, ते च पञ्चमप्रस्ताष्मनवमरथानेषु । ‘सर्वे’ अनन्तयोरिद्वा:
पुनरेकव भिलिता पक्षोनपञ्चाशादियं स्थान् । इति गायाद्यघट-
ना ॥ भावार्थस्तु स्थापनया कर्त्यते, सा चेयम्—

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---------|
| ३ | १ | ३ | २ | २ | २ | १ | ६ | १ | शोधा |
| ३ | २ | १ | ३ | २ | १ | ३ | ० | १ | कर्मानि |
| ३ | १ | ३ | २ | १ | २ | ३ | १ | १ | आगतम् |

भावना चाह—“न क-
रेह न कारवह छरेतं पि
अस्युं न समग्रुजायह
मयेण थायाए काष्ठणं ।
गाहो मेंओ ? ॥ इयाणी

थीयओ—न करेह न कारबेह करेतं अलएं न समगु-
जाणह मणेण वायाए पको । तहा मणेण काएण च
थीओ । तहा वायाए काएण य तइओ । थीओ मूलभेओ गओ
३ ॥ इयाणि तहयओ—न करेह न कारबेह करेतं पि अलएं न
समगुजाणह मणेण पको१, वायाण२, वाएण य३ । गओ तह-
यओ मूलभेओ४ ॥ इयाणि चउत्यो—न करेह न कारबेह म-
णेण वायाए काएण य पको१ । न करेह करेतं नागुजाणह
थीओ२ । न कारबेह करेतं नागुजाणह३ । चउत्यो मूलभेओ४ ॥
इयाणि वंचगो—न परेह न कारबेह मणेण वायाए एको१ । न
करेह करेतं नागुजाणह विइयओ२ । न कारबेह करेत नागुजा-

रण्ड ३ । एवं तिरिण भंगा मणेण वायाए य लद्धा । अरणे वि ति-
रिण मणेण काण्डा एवमेव लब्धंति । तहा अवरे वि वायाए
काण्डा य लब्धंति तिरिण । एवं एव सब्बे वि नव । पञ्चमोऽ-
प्युक्तो मूलभेदः ५ ॥ इयाणि छट्ठो—न करेह न कारवेह मणेण
एङ्को १ । तहा न करेह करेतं नाणुजाणह मणेण वीओ२ । न
कारवेह करेतं नाणुजाणह तद्वीओ२ । एवं वायाए काण्डा वि
तिरिण तिरिण लब्धंति । उक्तः पष्टो मूलभेदः ६ ॥ सप्तमोऽभिधी-
यते—न करेह मणेण वायाए काण्डा य एङ्को १ । न कारवेह
मणाईहि वीओ२ । करेतं नाणुजाणह तद्वीओ३ । सप्तमोऽप्युक्तः ॥
इदानीमष्टमः—न करेह मणेण वायाए य एङ्को १ । तहा
मणेण काण्डा य विद्वीओ२ । तहा वायाए काण्डा य तद्वीओ३ ।
एवं न कारवेह एत्थं पि तिरिण भंगा एवमेव । करेतं नाणुजाणह
एत्थं पि तिरिण भंगा । उक्तोऽष्टमः ८ ॥ इदानीं नवमः—
न करेह मणेण एङ्को १ । न कारवेह वीओ२ । करेतं नाणुजाणह
तद्वीओ । एवं वायाए वि तियं काण्डा वि होहि तिश्रमेव नवमोऽ-
प्युक्तः ९ । एवं सर्वसंपिण्डने संत्येकान्नपञ्चाशत् ॥ ७५ ॥

ततश्च—

कालतिएण य गुणिया, सीयालसयं तु होह भंगाणं ।

विसयवहि भंगतियं, चोयालसयं सविसयमिमि ॥ ७६ ॥

“ काल ” गाहा व्याख्या—‘ कालत्रिकेण ’ अतीतानाग-
तवर्तमानलक्षणेन गुणितात्त एकान्नपञ्चाशत्तः । ‘ सप्तचत्वारिंशं

१ “ मत्येकोनपञ्चाशत् ” च ।

शान् तु भवनि भक्षाना' निष्प एवोनपद्मारात्रां निनिता मनव-
त्वारिणां शत भवतीत्यर्थः । तदुक्तम्—“ सद्गुणलभाष्टमेवं, भगा-
उ भवति अउणुपरलेणाम् । तीयाणागपसंपद्गुणित्वं कालेण होऽ-
इम ॥ १ ॥ र्मायाल भगवत्य, कह कालतिष्ठु होइ गुणलाओ ।
तीयस्म पद्गुणलेण, पञ्चुपलेणस्त संबरण्य ॥ २ ॥ पद्गुणलायं तु
चहा, होइ एस्मस्त एव गुणलाओ । कालतिष्ठुं भणित्वं, त्रिष-
गणहरवायगोहि च ॥ ३ ॥ ” नन्देवं भावकस्य त्रिपतिविषय-
निरुच्छी सत्या संभवति, मा चास्यानुमतेष्वतिपिद्गुणलामंभविनो,
अन एव निर्युक्तिरुतोऽम्—“ दुनिह निविहेण ” इत्यादि इति इत्या-
पायाह—‘ विषयाद्विहः ’ भरतमध्यमापरडाद्विहित्यर्थः, ‘ भज्ञ-
विक ’ अनुमतिनिषेधमहितन् । चतुर्भत्वारिणां शत स्वविषये,
सभवद्वयवहारगोचरे अनुमतिवर्जनस्य सामान्येनामभवान् ।
इतमव इदयम्—यथपि भावकस्य सामान्येनानुमतिवर्जने न सभ
वति, सभवतमव्यवहारविषयेऽनुमतेष्वगतिसंभवान्, तथापि विशे-
चविषय गृहतोऽस्यानुमतिवर्जनमपि सभविषयमाभित्योक्तम् ।
तथा चोक्तम्—“ केह भणिनि गिहिणो, विविहं तिविहेण नत्यि
मंबरण्य । त न जओ निरिङ्गु, परणतां विसेसेऽ ॥ १ ॥ तो
कह निर्गुस्तीएऽगुमद्गुणिसेहो ति भो सविसयमिम । सामण्ये वा
तत्व उ, तिविहं तिविहेण को दोमो ॥ २ ॥ ” इति गाथार्थः ॥ ७६ ॥

नन्देवमपि “ न करेइ न कारेह करेतं नारणुजाएइ मणेण
वायाए ” इत्यादिपु भज्ञकेतु कायप्रवृत्तेरप्तत्वास्त्वात्वान् वत्प्रवृत्ती
न् च मनप्रवृत्तेरपि प्रसङ्गान् कथ प्रत्यार्थानपालनानंभवः ? इत्याह—

संभवमहिगच्छेयं, नियविसओ भरह आरियं खंडं ।

तस्स वहि सञ्चया, साहुसरिच्छा सविगिहीणं ॥ ७७ ॥

“ संभव ” गाहा व्याख्या—‘ संभवं ’ भङ्गकविरचनाल-
क्षणं संभवमात्रमधिकृत्यैवं प्रदर्शयते, न तु सर्वभङ्गेषु प्रत्याख्यातार
इत्यर्थः । यद्वा संभवं—सामान्येन प्रत्याख्यातुगतां विचित्रां विव-
क्षामाश्रित्येत्यर्थः । कदाचित्संभवं स्वविपयं तद्विवेत्यनपेद्य सा-
मान्येनैवमभिधीयत इत्यर्थः । स्वविपयमुद्दिष्टं व्याचष्टे—‘ निय ’
इत्यादि । ‘ निजविपयः ’ स्वविपयः, कोऽत्र ? ‘ भरतं ’ भरत-
क्षेत्रम्, तत्रापि ‘ आर्य खण्डं ’ मध्यखण्डं आर्यार्थपद्मविशतिजनप-
दैरुपलच्छितम्, तत्र किल संभवत्संब्यवहारवशेनानुमतेरागतिसंभव
इत्यर्थः । ‘ तस्मात् ’ भरतात् ‘ वहिः ’ अपरक्षेत्रेष्वित्यर्थः, इह
च सूत्रे “ कचित्पद्मस्याः ” इति पघी, संबन्धमात्रविवक्षया च ।
‘ सर्वत्रतानि ’ प्रागुद्दिष्टानि ‘ साधुसहजाणि ’ यतिरुल्यानि त्रिविधं
त्रिविधेनेत्यर्थः, तत्रानुगतिर्वर्जनस्यापि संभवात् ‘ सर्वगृहिणां ’
समस्तश्रावकाणाम् । इति गाथार्थः ॥ ७७ ॥

एवं त्रतयहणप्रकारं संभवत आविष्कृत्य त्रतस्वरूपमाह—

थूलगपाणवहस्सा, विरई दुविहो य सो वहो होइ ।

संकप्पारंभेहि, वजाइ संकप्पओ विहिणा ॥ ७८ ॥

“ थूलग ” गाहा व्याख्या—‘ स्थूलकप्राणवधस्य विरतिः’
स्थूरा एव स्थूरकाः—द्विन्द्रियादयः तेषां प्राणाः—शरीरेन्द्रियोच्छ्रा-
मायुर्लक्षणाः तेषां वधः—जिघांसनं तस्य विरतिः—निवृत्तिरित्यर्थः ।

१ “—वर्जनसंभवात् ” च ।

द्विविधभास्मौ वप्तो भवनि । कथन् ? ' संपत्पारम्भाभ्या ' तत्र
व्यापासनाभिमिथि सकल्यः, हृष्यादिकस्त्वागम्भ । यत्र ' वर्जयनि
मकल्यनः ' परिहरत्यमौ भावह प्राणवर्षं मंशस्त्रेन, नत्यागम्भ-
सोऽपि, तत्र नियमेन प्रहृते । ' विधिना ' प्रवचनोत्तेन वर्जयनि,
न तु व्यापासनाभिन् । इति गाथार्थ ॥ ७८ ॥

स चाय विधि ।—

गुरमूले गुप्तधर्ममौ, मरिन्गौ इचरं य इयरं वा ।
यजितु तम्मो सम्मं, यत्तेऽ इमे अर्द्धयारे ॥ ७९ ॥

" गुरमूले " गाहा व्यापास—' गुरमूले ' आचार्य-
न्तिके ' भूतधर्मो ' आद्यगितागुवतादिः, ' मविन ' मोहमुम्बा-
मिलारी, न तु शक्तिकाम, ' इचर ' चानुमान्यदिनालाशपिना
' इतरद्वा ' यावत्तथिकमेव ' वर्जयित्वा ' प्रत्यास्त्वाय वदमिति
प्रहृतम् । ' तन ' तदत्तम्बर ' सम्यक् ' अत्यवमायविगुद्धवा
' वर्जयनि ' परिहरते, विरतिपरिणतो प्रत्यास्त्वाने गत्येव प्रवृत्ति-
रेव नारथ सभवतीत्यर्थ । ' इमान ' वर्त्यमाणलहस्यान्, कान ।
अतिपरणान्यनीचागः—प्रत्यास्त्वानमलिनतोहेतयो व्यापासतान् ।
इति गाथार्थः ॥ ७९ ॥

तानेशाह—

पंधवहृष्टविच्छेदं, अडमारं मत्तपाद्याद्वृच्छेदं ।

कोदाइदूसियमयो, गोमण्डुपार्द्धं नो कुआ ॥ ८० ॥

" वप्तवहृ " गाहा व्यापास—वन्यप्रथच्छविच्छेदान् अ-
तिभार भलपानव्यवच्छेद कोधादिदूषितमना गोमण्डुगादीनां न

कुर्यात् । तत्र बन्धनं धन्यः—संयमनं रजजुदामकादिभिः, हननं—
बधस्ताटनं कपादिभिः, छविः—शरीरं तस्य च्छेदः—पाटनं करपत्रा-
विभिः । भरणं भारः अतीव भरणमतिभारः, प्रभूतस्य पूर्णफलादेः
स्कन्धपृष्ठगादिष्वातरोपणमित्यर्थः । भक्तं—अशनमोदकादि, पानं—
पेयमुदकादि, तस्य व्यवच्छेदः—निरोगोऽदानमित्यर्थः । एतान् स-
माचरन अतिचरति प्रथमागुणतम् । एतान् कोथादिदृष्टिमना न
कुर्यादिति । अनेनापवादमाह—अन्यथाकरणाप्रतिपेशावगमान् । तत्र
चायं पूर्वाचार्योङ्को विधिः—“ वंधो दुपयाणं चउपयाणं च अ-
ट्टाण अणट्टाण आ । अणट्टाण न वट्ट वंधितं । अट्टाण दुषिष्ठो
सावेकस्वो निरवेकस्वो य । गिरवेकस्वो निश्लं धणियं जं वंधद् ।
सावेकस्वो दामगंठिणा, जं च सष्ट पलीवरणाइसुं मुंचितं द्विदितं
वा, ण संसरपासाण वंधिअव्वं । एवं ताव चउपयाणं । दुप-
याणं पि दासो दासी वा चोगे वा पुत्तो वा णपदंतगाइ जड
वज्ञाति तो सविषमाणि वंधिअव्वाणि रम्मिवअव्वाणि य, जहा
अग्निभयाइसु न विणस्संति । ताणि किर दुपयचउपयाणि साव-
गेण गिरिहअव्वाणि जाणि अवद्वाणि चेव अच्छ्रुति । वहो वि
तह चेव । वधो नाम ताडणा । अणट्टाण निरवेकस्वो निहयं ना-
लेइ । सावेकस्वो पुण पुव्वामेव भीश्वपरिसेण होअव्वं । जइ न
करेज्जा तो मम्मं मोत्तूण ताहे लयाए दोरेण वा एकं वा दोरिण वा
वारे । छविच्छेश्वो अणट्टाण तहेव । निरवेकस्वो हस्तपायकरण-
ज्जाइ निहश्वो छिद्द । सावेकस्वो गंडं वा अरसं वा छिद्देज्जा व-

१ “ चिट्ठति ” च ।

द्वेज च । अद्भारे न आरोपथवो । पुत्रिं चेत् जा ब्राह्मणः
जीविआ सा मोतव्या । न होत्रा अलः जीविआ साहे दुष्पर्यं
जं मयं उक्तिवद् ओआरेइ था भारं पर्यं वद्वावित्रद । वद्वाणं जहा-
मामाविआओ ति भागभो रुणओ कीरद, हतसगदेसु ति के-
लाए चेत् मुष्यइ । आसहत्यीसु ति एसेव विही । भत्ताणाणी-
च्छेष्यो न कसस ति कायव्यो, निकलहुहो मा मरेज्ञा । वद्वेव अ-
णदाम दोसा परिहरेज्ञा । सावेश्यो पुण रोगनिमित्तं चा वायाए
चा भणेज्ञा, अज्ञ ते न देमि नि । सविनिमित्त वा उवधास कार-
येज्ञा । मव्वत्य ति जयणा, जहा धूलगपाण्याइयायस्म अद्यारो न
द्वन्द्व तदा पवड्यत्व । ” इति गायार्थः ॥ ८० ॥

उक्त मातिचारं प्रथमाणुग्रहम्, सांप्रत द्वितीयमुच्चते—

पूलमुसारायस्म य, चिरई सो पंचदा समासेण ।

कदयागोभूमालिपनासदरथवृद्धसक्षिङ्गे ॥ ८१ ॥

“ शूल ” गाहा ध्याल्या—स्थूलमृपावादस्य च विहविद्वि-
तीयमगुबत भवतीति गम्यते । तत्र द्विविधो सूपावादः—स्थूलः स-
स्थमध्य । तत्र परिस्थूलसुविषयो प्रतिदुष्टविवद्वासमुद्दृष्ट्य स्थूलः, वि-
परीक्षस्त्वतर, न च सेनेह प्रयोजनम्, आवक्षपमाधिकारान् स्थूल-
स्य प्रकान्तस्वान् । तथा चाह—‘ स पञ्चया सूपावाद’ पञ्चया—
पञ्चशङ्कार, ‘ समाख्येन ’ सहेष्येण, शैषमेदानां उक्तागदत्तादीनां
नजानीयत्वेनात्रिवान्तमांव इति इत्यप् । पञ्चविषयत्वमाह—‘ कन्या-
भूम्यलीकन्यासदरथवृद्धसाचित्ये ’ इति, अलीकराम्ब प्रत्येकं क-
न्यादिपदेषु योजनीयः, तथया—कन्यालीकमित्यादि, “ इत् पानी-

यादिपु ” इत्यलीकशब्द—ईत इदादेशः । तत्र कन्याविपयमलीकम्-
भिन्नकन्यामितरां वक्ति विपर्ययं वा । एवं गवालीकमपि, अल्प-
चीरं बहुक्तीरं विपर्ययं वा वक्ति । भूम्यलीकं तु परस्त्कामेवात्म-
स्त्कां वक्ति । व्यवहारे वा नियुक्तोऽनाभवद्यवहारेणैव कस्य-
चिदेकस्य रागाद्यभिभूतो वक्ति, अस्यैवेदमाभवतीति । न्यस्यत इति
न्यासः—रूपकाद्यर्पणं तस्य हरणं, येन वचनेन न्यासमपलपति स
मृपावादः, तद्ग्रहणं त्वदत्तादानमेवेति भावः । कूटसाञ्चित्वं तू-
त्कोचामत्सराद्यभिभूतः प्रमाणीकृतः सन् कूटं वक्ति, यथाऽस्म्यह-
मत्र साक्षी । इति गाथार्थः ॥ द१ ॥

अतिचारानाह—

इह सहस्रभक्त्याणं, रहसा य सदारमंतभेयं च ।
मोसोवएसयं कूडलेखकरणं च वज्जेज्जा ॥ द२ ॥

“ इह ” गाहा व्याख्या—‘ इह ’ मृपावादविरतौ सह-
सा-अनालोन्याभ्याख्यानं ‘ सहसाभ्याख्यानं ’ असदध्यारोपणम् ।
तद्यथा—“ चौरस्त्वं पारदारिको वा ” इत्यादि । रहः—एकान्तः
तत्र भवं रहस्यं तेन तस्मिन् वाऽभ्याख्यानं रहस्याभ्याख्यानम्, ए-
तदुक्तं भवति—एकान्ते मन्त्रयमाणानभिधत्ते, एते हीदं चेदं च
राजविरुद्धादिकं मन्त्रयन्त इति । ‘ स्वदारमन्त्रभेदं च ’ स्वकलत्र-
विश्रव्यभापितान्यकथनं चेत्यर्थः । ‘ मृपोपदेशं ’ असत्योपदेशम्,
इदमेवं चैवं च ब्रह्मीत्यादिलक्षणम् । ‘ कूटलेखकरणं च ’ अन्य-
नामसुद्राञ्चरविम्बस्त्वपलेखकरणं च वर्जयेत् । यत एतानि समा-
चरन्नातिचरति द्वितीयागुन्नतम् । इति गाथार्थः ॥ द२ ॥

उत्तं सातिचार द्विनीयमगुणगम, अपुना रुमीयमाह—
भूलादत्तादाणे, विरद्द तं दुविह मो उ निदिहुं ।
सचित्ताचिषेदु, लवण्यहिरण्यादत्युगमं ॥ ८३ ॥

“ भूलादत्तादाणे ” गाहा व्याख्या—इहादत्तादान द्विविध,
स्थूल सूक्ष्म च । पश्च परिशूलनस्तुविषयं चौरांगेपण्डेतुलेन प्र-
वीति स्थूलम्, तद्विपरीत तु सूक्ष्मम् । नग्र ‘ स्थूलादत्तादाने ’ वदि-
वया ‘ विरनि ’ निष्ठुत्तिस्त्रीयमगुणतमिनि प्रक्रम । ततु ‘ दि-
विषय ’ द्विप्रकारम्, ‘ मो ’ इति निपान पादपूरणे, ‘ तु ’ पुन-
रर्थे भिन्नवमध्य, तात्त्विक्याति योनिम एव । ‘ निर्मित्य ’ कथितमागम
इति गम्यते । तदेषु द्वेविष्यमाह—‘ सचित्ताचिषेदु ’ सचित्तादिप
यमचित्तविषय चेत्यर्थं । अंशाह—लवण्यहिरण्यादिवस्तुगतम्,
इति जीवानीवरूपत्वान् तस्य आन्तिशान्तदध्यवस्थादिपरिमद् । मि-
आदत्तादान त्वनयोरेवान्तर्भूतवाक्ष पृथग्विवक्षितम्, भजेपस्त्वैव
प्रत्युत्त्वान् । इति गायार्थं ॥ ८३ ॥

इहातिचारानाह—

बज्जइ इह तेनादृढ तकरजाग विरुद्धरज च ।

शूद्धतुलकुडमाण, तप्पडिस्व च ववहार ॥ ८४ ॥

“ बज्जइ ” गाहा व्याख्या—‘ वर्जयति ’ परिहरते ‘ इह ’
अदत्तादानविरतौ स्तेनादृतम् ’ तत्र स्तेना—चौरासीराहन—आनीत
किञ्चित् तु कुमारि देशान्तरान् वत् समर्दं इति लोभान् एहीयान् ।
तथा ‘ तस्करयोग ’ तस्करा—चौरासीया योग—हरणक्रियाया प्रे-
रण आभ्यनुका “ हरत यूयम् ” इति तस्करयोगस्त च वर्जयेत् ।

‘ विरुद्धराज्यं ’ इति च सूचनात् सूत्रमिति विरुद्धराज्यातिक्रमं च वर्जयेत्, विरुद्धनृपयो राज्यं तत्रातिक्रमः, न हि ताभ्यां तत्र तदागमनमनुज्ञातमिति । तथा ‘ कूटतुलाकूटमानं ’ तुला-प्रतीता, मानं कुटवादि, कूटत्वं-न्यूनाधिकत्वं, न्यूनया ददाति अधिकया गृह्णाति । तथा ‘ नत्प्रतिस्थपं च व्यवहारम् ’ तेन-अधिकृतेन प्रतिस्थपं-सदृशं तत्प्रतिस्थपं तेन व्यवहारम्, यद् यत्र घटते ब्रीह्यादिघृतादिपु पलब्ज्यादिवसादि तस्य तत्र प्रक्षेपेण विक्रयस्तं वर्जयेत्, यत एतानि समाचरन्नतिचरति तृतीयाणुब्रतम् । इति गाथार्थः ॥८४॥

उक्तं सातिचारं तृतीयाणुब्रतम् । सांप्रतं चतुर्थमाह—

परदारस्स य विरई, ओरालविउच्चभेयओ दुविहं ।

एयमिह मुणेयव्यं, सदारसंतोस मो इथ ॥ ८५ ॥

“ परदार ” गाहा व्याख्या—परे—आत्मव्यतिरिक्तस्तेषां दाराः—कलत्राणि परदारस्तेभ्यस्तेषां वेति, प्राग्वत् पष्ठी । एकवचनान्तता तु प्राकृतत्वात् । परकलत्रस्यैव विरतिः, न वेश्याया अपीत्यर्थः । चतुर्थमणुब्रतमिति प्रक्रमः । चशन्दः समुच्चये । स्वदारसंतोपश्चेत्यत्र द्रष्टव्यः । ‘ औदारिकवैक्रियभेदतो द्विविधमेतद् ज्ञातव्यं ’ इति एतादिति प्राकृतत्वेन नपुंसकर्निर्देशः, ‘ एते ’ परदारा इति द्रष्टव्यम्, ‘ औदारिकवैक्रियभेदतः ’ द्विविधाः । द्विप्रकाराः । तत्रौदारिका नार्यः तिरश्च्यश्च । वैक्रिया विद्यार्थ्यो देव्यश्च । स्वस्य दाराः स्वदाराः—स्वकलत्रं तैः संतोषः स्वदारसंतोषः, मैथुनासेवनं प्रति वेश्यादेरपि वर्जनमिति हृदयम् । स्वदारसंतोपश्चतुर्थाणुब्रतमिति योजितमेव । अत्र चतुर्थाणुब्रते वर्जयतीत्युत्तरेण योगः । इति गाथार्थः ॥ ८५ ॥

आतिचारणनाह—

यज्ञाद् इच्छरिश्चपरिगग्नियाममणं अणुंगकीडं च ।

परवीवाहकरणं, कामे तिज्वाभिलासं च ॥ ८६ ॥

“ वलड ” गाहा व्याख्या—‘ वर्जयति ’ परिहरनि, किम् ? इत्परीति, अटनशीला इत्परी “ एनेः शीले त्वरत् ”—“ आदीती चहुल ” इत्पादन्तसा स्तोषकालं गृहीता, तम्यां गमनमिति संबध्यते, भाटिप्रदानेन कियन्तमपि कालं स्वपशीकृतयेरयामैथुनासेवनमित्यर्थः । ‘ अपरिगृहीतागमनं ’ अपरिगृहीता नाम वेरया अन्यसत्क-
गृहीतभाटिः, कुलाङ्गना वाडनाथेति तद्वमनम् । यथाक्रमं स्वदारसं-
चोपवन् परदारघर्जिनोरनिचारौ । अनद्वीडा नाम कुचक्क्षोऽननाभि-
चदनान्तरवीडा, तीनसामाभिलापेण वा परिसमाप्तरनस्याप्याहार्थः
स्थालकातिभियोपिताँ इवान्यप्रदेशासेवनमिति । ‘ परविवाहकरणं ’
अन्यापत्यम्य कन्याकलिप्सया स्नेहसंबन्धेन वा विवाहकरणम्,
स्वापलेप्यपि भंख्याभिग्रहो न्याय्य इति । ‘ कामे तीव्राभिलापं च ’
इति सूचनान् ‘ कामभोगनीत्राभिलापः ’ कामाः—शब्दाद्यो भोगाः—
रसाद्य एतेषु तीव्राभिलापः—अत्यन्ततद्वध्यनमायित्वम् । “ तानि
समाचरन्ननिचरनि चतुर्थागुप्रतम् । इति गायार्थ ॥ ८६ ॥

उक्तं सातिचारं चतुर्थमगुप्रतम् । साप्रतं पञ्चममुन्द्यते—

इच्छापरिभाष्यं खलु, अमयारंभनिशिविचिमंजणयं ।

सिचाहवत्पुनिसर्वं, चिचादनिरोहमो चित्तं ॥ ८७ ॥

“ इच्छा ” गाहा व्याख्या—इच्छाया इच्छया वा परिमाणं
इच्छापरिमाणं पञ्चममगुप्रतमिति प्रक्रमान्यम् । तत्त्वेच्छापरिमाणं

किंकलम् ? इत्याद—‘असदारम्भविनिवृत्तिनंजनकं’ असुन्दरारम्भ-
प्रत्याल्याननिवन्धनम् । तथ ‘चेत्रादिवस्तुविषयं’ चेत्रादीनि व-
स्तृनि विषयोऽस्येति ममामः । तदुक्तम्—“धणं धणं खेत्तं
वत्थुं स्तुपं सुवरणं कुविश्चं दुपयं चउपयं च” इत्यादि । अत्र
चादिशब्दः प्रकारवचनः । चेत्राद्यः चेत्रप्रकारा धनाद्य इत्यर्थः ।
‘चित्ताद्यवरोधान्’ चित्तवित्तदेशवंशालाश्रयेण ‘चित्रं’ अनेका-
कारम् । इति गाथार्थः ॥ ८७ ॥

अत्रातिचारानाह—

खेत्ताद्विहरणाद्धणाद्वपयाद्वकुप्पमाणकमे ।

जोयणपयाणवंधणकारणभावेहि नो कुणद ॥ ८८ ॥

“खेत्ताद्” गाहा व्याख्या—‘चेत्रादिद्विरणादिधनादि-
द्विपदादिकुप्पमानकमान’ चेत्रादिगृहीतपरिमाणतिकमान्तित्यर्थः ।
‘योजनप्रदानवन्धनकारणभावैः’ एभिर्योजनादिभिर्यथासंन्ध्यं ‘न
करोति’ न विधत्ते इति भसुदायार्थः । तत्र चेत्रवास्तुनां योजनेन
द्वित्रादीनां गृहीतपरिमाणभज्जभयाद् वृत्याद्यपनयनादिनेकत्वाद्यापादने-
नेत्यर्थः । एवं हिरण्यगुवर्णयोः प्रदानेनागृहीतपरिमाणावधिकालात्प-
रत उद्ग्राहणीययोर्द्विप्रयुक्त्या धनधान्ययोर्वन्धनेन—सत्यद्वारादिना
नियन्त्रणेन । द्विपदचतुष्पदयोः कारणेन—गर्भाधानप्रयोजनेन, कु-
प्पस्य च भावेन—अध्यवसायेन तदर्थित्वस्त्वपेण, एतत्तु सर्वमपि प्र-
दानादि परिमाणावर्धीकृतचतुर्मास्कादिकालादर्वागेवं करोति—किल म-
मैतदवर्धीकृतकालात्परत एव परिग्रहविषयीभविष्यत्यध्यवसायेन ।

अत्र चादिशब्दा आगमपाठप्रसिद्धवास्तवादिमाहकाः । तथा चाग-
मः—“ पण्डितेष्यमाणाइकमे खेतवत्पुष्पमाणातिकमे हिरण्य-
मुदण्डेष्यमाणाइकमे दुपयचउपयष्टमाणाइकमे कुविअपमाणाइ-
कमे । ” पञ्चसंख्याविषयत्वं च मज्जातीयत्वेन शोषभेदानामन्त्रान्त-
भांशान्दिष्ट्यहितत्वेन च प्रायः सर्वत्र मध्यमगतेविवितत्वान् पञ्च-
कमंख्यवैशातिचारपरिगणनम्, अतध्यतुष्टुपादादिमंखयातिवारणा-
मगणनमुपपश्य । इति गाथार्थः ॥ ८८ ॥

उपान्यगुवतानि, मांप्रतं गुणवतान्याद—तथापि प्रथमं
दिग्ब्रह्म, तदाऽ—

उद्गुहोतिरियदिसि, चाउम्भासाइकालमाणेषु ।

गमणपरिमाणकर्णं, गुणव्ययं होइ विएषीयं ॥ ८९ ॥

“ उद्गुहो ” गाहा व्याख्या—‘ उद्गुहितिर्यदिशम् ’
इति उद्गुहे—पवताणोहणादी, अधः—कूरपवेशादी, विर्यग्—पूर्वांशसु
दिष्टु, विक्षादः प्रत्येकमभिसंव्ययते, उद्गुहितिशमहीकृत्य ‘ चा-
तुमांस्यादिकालमानेन ’ चतुरो मासान्, अष्टौ वा यावत् इत्यादि ।
‘ गमनपरिमाणकरणम् ’ अभिप्रेतस्त्रिव्रान् परतो गमनतिरूपितिर्ययः ।
‘ गुणवत् ’ अतुग्रतानामेव गुणकरमित्यर्थः, भवति विहीयं प्रथ-
मभिति गम्यते । इति गाथार्थः ॥ ८९ ॥

अव्यासिचारनाद—

वजाद उद्गुहेष्यमाणयण्यप्येसयोभयविमुद्दं ।

तदृचेष्य खेतवृद्धिं, कदिचि गद्यमंतरदं च ॥ ९० ॥

१ “ गाथाविभागार्थ ” अ ।

“ वज्र ” गाहा व्यास्या—‘ वर्जयति ’ परिहरते ‘ ऊर्ध्वादिकम् ।’ इति, ऊर्ध्वादिषु दिन्नु क्रमः—क्रमणं विवक्षितक्षेत्रात्परत इति गन्यते अतिक्रमो वा क्रमोऽभिप्रेतः तम् । अनेन त्रयोऽहेतिचाराः प्रतिपादिताः । तदथा—“ उद्धृदिभिपमाणाइकमे१, अ-
होद्दिसिपमाणाइकमे२, तिरिश्रद्विसिपमाणाइकमे३ । ” एवं चोर्द्वा-
दिदिगतिक्रमं द्विविधं त्रिविधेन प्रहणे ‘ आनयनप्रेपणोभयविशुद्धं ’
वर्जयति, तत्र आनयनं—परेण विवक्षितक्षेत्रात्परतः स्थितस्य, प्रेप-
णं ततः परेण नयनम्, उभयं—उक्तद्वयं अप्येकदैव तेः वि-
शुद्धं—निर्देशपम् । ‘ तथैव ’ तेनैव प्रकारेण ‘ क्षेत्रवृद्धि ’ पूर्वादिदि-
क्षपरिमाणस्य दक्षिणादिदिशि प्रक्षेपतत्त्वणां वर्जयतीत्यनुवर्तते ।
‘ कथश्चिन्त ।’ केन प्रकारेण ‘ स्मृत्यन्तर्धानं च ।’ सृतेः—गमनपरिमा-
णयोजनादिसंख्योपयोगस्यान्तर्धानं—तिरोधानं भ्रंशनमित्यर्थः । सृ-
तिमूलं हि नियमानुष्ठानम्, तद्भ्रंशो हि नियमत एव तद्भ्रंशा
इत्यतिचारता । इति गाथार्थः ॥ ६० ॥

तत्र वृद्धसंप्रदायः—उद्धुं जं पमाणं गहिश्च तस्म उचरि-
पञ्चयसिहरे रुक्खे वा मफडो पक्खी वा सावयस्स वत्थं आभ-
रणं वा गिरिहिँ पमाणाइरेण भूमि वज्रेजा तत्थ से न कप्पइ गंतुं,
जाहे तं पटिश्च अरणेण वा आणिश्च ताहे कप्पइ, एश्च पुल
अट्टावयउज्जेताइसु हवेजा । एवं अहे कूविआइसु विभासा । तिरि-
श्च जं पमाणं गहिश्च तं तिविहेण वि करणेण नाइसुमिथवं ।
खेत्तबुडी न कायव्वा, कहं१ सो पुच्छेण भंडं गहाय गओ जाव
तं परिमाणं, तओ परेण भंडं अग्वइ ति काडं अवरेण जाहि-

जोन्यणाणि ताणि पुन्नदिमाण न हुमेजा । मिथ बोलीणो होआ
निअतिअब्ब ति, जाणिए वा ण गतब्ब । अण्णो न विसज्जि
अब्बो । अण्णाणा कोई गओ होआ ज विमुमरिअसंतगएण
लहू अण्णाणा ति गण्ण वा त न गेएहेज ” ति ॥

उक्त सातिचार प्रथम गुणप्रतम्, अभुना द्वितीयमाह—

वज्ञाणमण्णतगुभरिअचंगाण च मोगओ माण ।

कम्माओ उरकम्माइयाण नवर इम मणिय ॥ १ ॥

“ वज्ञण ” गाहा व्याख्या—‘ वर्जन ’ परिहार ‘ अण-
तगुचरि ’ ति अनन्तकायस्य—आर्द्धनादेरागमप्रभिद्वम्य, यदुसम्—
“ चक्राग भजमाणस्स, गठी चुलणपणो भवे । पुदविसरिसेह
भेषण, अण्णतजीव वियाण्णाहि ॥ १ ॥ गृहसिंहग पत्त, सच्चीर
ज च होइ निच्छीर । न पि अ पण्डुसवि, अण्णतजीव वियाण्णा-
हि ॥ २ ॥ मञ्चा वि कदनाई, सूरणकदा अ वज्रकदो अ । अ
झाइरिदा य तहा, अझ तह अज्जकच्चूरे ॥ ३ ॥ सत्तावरी विरु-
ली, शुद्धरि गिलोई अ होइ नायब्बो । गज्जर लोणा लोढा, विरह
चहू लालवत च ॥ ४ ॥ ” इत्यादि । एव प्रसिद्धस्यानन्तकर्त्तव्य
वर्जनमिति योग । तथा उदुम्बरीति—सिद्धान्तप्रमिद्वाना वटविष्य-
लोदुम्बरसच्चकुम्बरफलानामत्यङ्गानाम्—अतिभोगाङ्गाना मध्यम-
भुमासादीनाम्, चर्य तूलरत्र योग, ‘ भागत ’ भोगमाभित्य
‘ मानं च ’—परिमाण च । इद हि रिल द्वितीय गुणप्रत उपभोगपरि
भोगगुणप्रताभिधान द्विपा भवति भोजनत कर्मतश्च । तत्रोपभुज्यत

इत्युपभोगः—अशनादिः, सङ्कृदर्थत्वादुपशब्दस्य, अन्तरर्थत्वादन्त-
भोगो वा । परिमुच्यत इति परिभोगः वस्त्रादेः, आदृत्यर्थत्वात् परिश-
ब्दस्य, वहिरर्थत्वाद्वा वहिभोगः । एव चात्मक्रियास्त्वोऽपि विषय-
विषयिणोरभेदाद्विषय एवोपचरितः, अत एव तन्निवन्धनकर्मण्य-
प्ययमत्रोपचर्यत इत्याह—‘ कर्मतः ’ कर्माश्रित्य ‘ सरकर्मादीनां ’
कोट्टपालकर्मादीनां वर्जनमिति प्रकृतम् । ‘ अपरं ’ अन्यद् द्वितीयं
गुणन्नतमिदं ‘ भणितं ’ प्रतिपादितं पूर्वाचार्यैरिति गम्यते ॥

तथा च वृद्धसंप्रदायः—“ भोश्रणां वावगो उत्सग्नेण
फासुञ्च एसणीञ्च आहारं आहारेजा । तस्सासइ अणेसणीयमवि-
सचित्तवज्जं । तस्सासइ अणंतकायवहुवीयगाणि परिहरेजा । अ-
सणे अल्यमूलगमंसादि, पाणे मंसरसमज्जाई, खाइमे पंचुंवराई,
साइमे महुमाई । एवं परिभोगे वि वत्थादौ-थुल्लधवलप्पमुल्लाणि परि-
मिआणि परिमुजेज्जा । सासणगोरवत्थमुवरि विभासा, जाव देव-
दूसाइपरिभोगे वि परिमाणं करेज्जा । कम्मओ वि अकम्मा न तरह
जीविडं ताहे अज्ञंतसावज्जाणि परिहरेज्जा । एत्यं पि एकसिं चेव
जं कीरह कम्मं पहरववहरणाइविवक्ष्वाए तमुवभोगो, पुणो पुणो
य जं तं पुण परिभोगो त्ति । अरणे पुण कम्मपक्षे उवभोग-
परिभोगजोयणं न कर्तति । उवज्जासो अ एत्रसुवभोगपरिभोगका-
रणभावेणं । ” इति ॥ ६१ ॥

उभयरूपेऽप्यत्रातिचारानाह—

सचित्तं पदिवद्दं, अपउलदुप्पउलतुच्छभक्षणयं ।

वज्जह कम्मयओ वि हु, एत्थं हंगालकम्माई ॥ ६२ ॥

“ सचित् ” गाहा व्याख्या—आथेकेण हि भोजनते किं
ल उत्सर्गं तो निरवधाहारमोजिना भाव्यम्, कर्मवश प्रायो निरवद्य-
कर्मानुष्ठानेन भवितव्यम् । अतस्तदपेक्षया यथासुभवममी आदि-
चारा दृश्या, तत्र च भोजनतस्तावदाह—‘ सचित् ’ इत्यादि । ‘ स-
चित् ’ कन्दादि, इह च सर्वेत्र निवृत्तिविपर्यीकृतप्रवृत्तावप्यविचार्य
भिषान प्रतसापेक्षप्रवृत्तानाभोगादिनिषन्धप्रवृत्त्या दृश्यम्, अन्यथा
भङ्ग एव स्थान् । तथा तनिवृत्तिविपर्यीकृत सचित् च नैयतीति
योग । प्रतिवद्यमिति सचिताप्रतिवद्य—वृत्तावयगोन्दादि परमलादि
चा । ‘ अपउलित्य ’ इति ‘ अपक ’ कणिकादि समवत्सचिताव
यवम् । ‘ दुष्प्रवलित्य ’ इति ‘ दुष्पक ’ अर्थस्विन्नप्राय चावपूल
कादि । तुच्छ—यत्र बहुनाम्यि भक्षितेन न विद्धिन् तथाविषमाहार-
कार्यम्, समददवद्य थाऽनिष्ट्यन्नमुद्रफल्यादि । भक्षणशाद् प्रत्येक
भविसवध्यते, सचित्तमन्नणमित्यादि । ‘ वर्जयति ’ परिहरते ‘ कर्म-
चोऽपि च ’ कर्माक्षित्य पुन ‘ अत्र ’ द्वितीयगुणप्रतेऽन्नारकर्मादि
वर्जयतीति योग । कर्मवो हि द्वितीयगुणप्रते पञ्चदशाविचार्य भ-
वन्ति । तदुकम्—“ इगाले१वद्य२साढी३भाडी४कोडी५मु५ वज्ज-
कम्म । वाणिज्ञ चेव यदत१लक्ख२रस३केस४विसविसय५ ॥ १ ॥
एव मु जतपीलणकम्म१ निष्क्रियण२ च दशदाण३ । सरदहतलाय-
सोस४, असै५पोस५ च वज्जेज्ञा ॥ २ ॥ ” भावार्थसु शुद्धसप्र-
दायादवसेय, स चायम्—

“ इगालकम्म ति इगाले वहिज विविष्णु, तत्य छण्ड-
दायाण वहो, त म कृष्ण । वणकम्म जो वण किण्ड, पच्छा-

कृत्वे छिदितं मोह्नेण जीवइ, एवं पत्तगाइ पडिसिद्धा होति । सागडिकम्मं सागडिअत्तरेण जीवइ, तत्थ वंधवहाइ दोसा । भाडीकम्मं सएणं भंडोवक्त्वरेण भाडारेण वहइ, परायगं न कप्पइ, अरणेसिं वा सगडं बलदे अ देइ, एवमाइ काउं न कप्पइ । फोडीकम्मं उडत्तरणं हलेण वा भूमीए फोडणं । दंतवाणिजं पुनिव चेव पुलिंदाणं मुळं देइ, दंते देजाह त्ति, पच्छा पुलिंदा हत्थि घाएंति, अचिरा सो वाणिश्चओ एइ त्ति काउं, एवं कम्मगराणं संखमुळं देइ, पुव्वाणिश्च किणाइ । लक्खवाणिजं लक्खवाणिजे वि एए चेव दोसा, तत्थ किमिआ होति । रसवाणिजं कल्वालत्तरणं, तत्थ सुराइ अणेगे दोसा मारणश्चाकोसवहाइ जम्हा तम्हा न कप्पइ । केसवाणिजं दासीओ गहाय अरणत्थ विकिणाइ जत्थ अग्धंति, एत्य वि अणेगे दोसा परवसन्नादओ । विसवाणिजं विसविक्षओ सो न कप्पइ, तेण घूण जीवाण विराहणा । जंतपीलणकम्मं तेल्लिअजंतं उच्छुजंतं च, तकम्माई य न कप्पइ । निलंछणकम्मं वद्देउं गोणाइ न कप्पइ । दवगिंदावणयाकम्मं घणदवं देइ खेत्तरक्तवणनिमित्तं जहा उत्तरावहे, पच्छा दड्हे तस्णगं तणं उड्हेइ, तत्थ सत्ताणं सयसहस्राण वहो । सरदहतलागपरिसोसणया सरदहतलागाईणि सोसेइ, पच्छा वाविज्जइ, एवं न कप्पइ । असईपोस त्ति जहा गोल्लविसए जोणीपोसणगा दासीण तणिश्च भाडिं गेरहंति । ” प्रदर्शनं चैतद् वहुसावद्यानां कर्मणामेवंजातीयानाम्, न पुनः परिगणनमिति ॥ इह चैवं विंशतिसंख्यातिचाराभिधानमन्यत्रापि पञ्चातिचारसंख्यया तजातीयानां ब्रतपरिणामका-

तुष्यनिषन्धनविधीनामपरेषां मंभदो द्रष्टव्य इति शापनार्थैष, वेन सूल्यन्तर्थानादयो दयामंभवं सर्वप्रगेव्यतिचाप्य हरयाः । इनं प्र-
राज्ञेन । इति गाथार्थ ॥ ६३ ॥

उक्त सातिचारं द्विनीयं गुणव्रतम् । इतानीं एतीयमाद—
सद्ग्रणतथदंडविरई, अस्मं स घउव्यिहो अवज्ञाणे ।
प्रभयापरिए हिसप्ययाणं पावोवएसे य ॥ ६४ ॥

“ सह ” गाहा उवाच्या—‘ तथा ’ तेनैव प्रकारेण “ गु-
रुमूले ” इत्यादिना निर्दिष्टेन ‘ अनर्थदरहविरतिः । इति अर्थः—
प्रयोजनम्, न विद्ययेऽर्थो यदिमन सोऽनर्थः, दरहवते आत्माऽ-
नेनेति दरहः—निप्रह, अनर्थज्ञासी दरहश्चानर्थदरहः—इहलोक-
प्रयोजनमप्यक्षीकृत्य निष्प्रयोजनमृतोपमर्देनात्मनो निप्रह इत्यर्थ,
तस्य विरतिः—उपरमः ‘ अन्यन् ’ अपरं एतीयं गुणव्रतमिति
हरयम् । स चानर्थदरहः ‘ चतुर्विधः । चतुर्भ्यकारः । तदाद—
‘ अपच्याने । निष्प्रयोजनदुष्क्षानविषय इत्यर्थ । सदुष्टम्—
“ कहया वषड् सत्पो १, कि भंडे १ कत्थ बेचिआ भूमी १ ।
को कयविकयकालो १, निष्प्रियसई कि कहि बेण १ ॥ १ ॥ ”
इत्यादि । ‘ प्रमादाचरिते । इति मध्यादिः प्रमाद तदाधरितविषय ।
अनर्थदरहत्वे चास्योक्तश्चार्थद्वारेण स्वदुद्देश्य हरयम् । दिसेति—
हिसाहेतुत्वादायुपानलविषादयो हिसेत्युच्यन्ते, कारणे कार्योपचा-
यन्; तेषां प्रदाने—अन्यरम्ये तत्समर्थेणे । ‘ पापोपदेशो च ’ सूच-
नात्मूलमिति ‘ पापकर्मोपदेशो ’ कृच्यायुपदिशाने । सदुष्टम्—“ सेते

स्त्रेहं गोणे, दग्धे प्राह सावयज्ञस्स । उवदिसिं णो कप्पद्ध,
जागिश्चिलावयणसारस्स ॥ १ ॥ ७ ‘ चः ॑ समुष्ये । एवं च-
तुर्विधोऽनर्थदण्डः । इति गाथार्थः ॥ ६३ ॥

अत्रातिचारानाह—

कंदप्पं कक्ष्यं, मोहरियं संजुयाहिगरणं च ।
उवभोगपरीभोगाइरेगयं चेत्थ वज्जेह ॥ ६४ ॥

“ कंदप्पं ” गाहा व्याख्या—कन्दप्पं कौकुच्यं मौख्यं सं-
युताधिकरणं चोपभोगपरिभोगतिरेकतां चात्र वर्जयतीति पद्ध-
टना । कन्दप्पः—कामः तद्देतुर्विशिष्टो वाकप्रयोगोऽपि कन्दप्पं उच्यते,
मोहोदीपकं वा नर्मेति भावः । इह च सामायारी—“ सावगस्स
अदृहासो न वद्दृह । जइ नाम हसिअव्वं तो ईसि चेव विहसि-
अव्वं ” इति । कौकुच्यं—कुत्सितसंकोचनादिकियायुक्तः कुकुचः,
तद्वावः कौकुच्यम् ; अनेकप्रकारा मुखनयनोप्रकरणभ्रूविकार-
पूर्विका परिहासादिजनिता भाष्टानामिव विहसनक्रियेत्यर्थः ।
एत्थ सामायारी—“ तारिसाणि भणिं न कप्पन्ति जारिसेहि-
लोगस्स हासो उपज्ञाह । एवं गर्वेण ठाणेण वा ठाहूं ” इति ।
मौख्यं—धाष्टर्थप्रायमसंवद्धप्रलापित्वमुच्यते । “ मुहेण वा अरि-
माणेह, जहा कुमारामधेण सो चारभडो विसजिओ, रणणो निवे-
ह्यं, ताए जीवियाए वित्ती दिल्लण, अणेया रुटेण मारिओ
कुमारामधो । ” ‘ संजुत्ताहिगरणं ’ अधिकियते नरकादिप्पनेन-
त्यधिकरणं वास्युदूखलशिलापुत्रगोधूमयन्त्रकादि, संयुक्तं—अर्वकिया-

करण्योग्यम्, संयुक्तं च तदधिकरणं चेति समाप्तः । तत्थ सामा
यारी—“ जावगौण न संजुताणि चेव सगडाईणि धेरेभव्याणि,
एवं वासीपरमुभाईविभासा । ” ‘ उवभोगपरिभोगाइरेगयं ’ नि
उषभोगपरिभोगरात्मार्थो निरूपित एव, तदतिरेकता—तदाधिकरण्,
एत्थ वि भाषायारी—“ उवभोगाइरित्तं जह तेज्ञामलण वहु गिणहइ
तो बहुगत एहायगा वरति, तस्स लोलिआगा अहये वि एहायगा
वरति, पञ्चांश पूतरआउकायवहो । एव पुण्यतंयोलभाईविभासा ।
एवं न वट्टइ । को विद्वी भावगस्स उवभोगे एहाये ? धेरे एहाइ-
यत्वं, तत्त्वं ताहे तेज्ञामलणहि सीमं घंगिता सबै साडिझर्ण
तेज्ञागाईीलं तडे निविहो अजलीहि एहाइ । एवं जेसु अ पुण्यमु-
कुंगुमाइ ताणि व परिहरति ” ॥ ६४ ॥

ताँ सातिचार तृतीयं गुणप्रतम् । तदुक्ती चोतानि गुणत्र
तानि । अधुना शिशाप्रतान्युच्यन्ते, तत्र शिशा—अभ्याससंलग्नपा
नानि प्रतानि शिशाप्रतानि मुनः पुनरामेवनाहार्णणीत्यर्थः । तानि च
सामायिकादीनि चत्वारि, तत्र तावत् सामायिकमाह—

सिक्षायर्थं तु एत्य, सामाइय मां तर्यं तु विएण्यं ।

सारज्जेयरजोगाण चञ्चलासेवयारूपं ॥ ६५ ॥

“ गिक्खा ” गाहा व्याख्या—शिशा—परमापदप्राप्तिका
क्रिया, उद्धरणान व्रतं शिशाप्रतं ‘ अव ’ भावकर्थमें । सामायि-
कम् इनि समः—एगडेपवियुक्तः, आयः—लाभ, समस्यायः समायः,
समो हि प्रपित्तशमपूर्वीक्षानदर्शनशारिप्रपर्यायैर्निरपमसुरहेतुभिरधः-
कृतचिन्तामणिकल्पदुर्मुख्यते, स एव समायः प्रयोजनमस्य विज्ञातु-

प्रानस्येति प्रयोजन इति, किम्? सामायिकम्, प्राकृतत्वात्सुप्तलुका निर्देशः । 'मो' निपातः पादपूरणे । 'तत्तु' सामायिकं पुनः 'सावद्येतरयोगानां' सपापधर्मव्यापाराणां यथासंख्यं वर्जनासेवनास्वरूपं कालावधिनेति गम्यते । तस्मिन् गृहीते आरम्भादिपरिहारः स्वाध्यायादिविधिश्च विधेयः । इह सावद्ययोगवर्जनवद्नवद्ययोगासेवनमप्यहर्निंशं कर्तव्यमिति ज्ञापनार्थमुभयोपादानम् । एत्थ पुण सामायारी—“ सामाइयं सावएण कहिं कायब्वं ति ?, इह सावगो दुविहो, इड्डीपत्तो अ अणिद्विपत्तो अ । जो सो अणिद्विपत्तो सो चेद्यघरे साहुसमीवे करेइ, घरे वा पोसहसालाए वा । जत्थ वा वीसमइ अच्छइ वा निवावारो सञ्चत्य करेइ । सब्वं चउसु वि ठाणेसु नियमा कायब्वं—चेद्यघरे साहुसमीवे पोसहसालाए घरे आवासगं करोति त्ति । तत्थ जह साहुसगासे करेइ तत्थ का विही ? जइ परंपरभयं नत्थि, जइ वि अ केणइ समं विवाओ नत्थि, जइ कस्तइ न धरेइ मा तेण अंछवियंछी कजिही, जइ धारणगं दद्वूणं न गिणहइ मा भजिही, जइ य वावारं न करेइ ताहे घरे चेव सामाइयं काऊणं बच्छइ । पंचसमिश्रो तिगुन्तो इरियादुवउत्तो, जहा साहू, भासाए सावज्जं परिहरेतो, एसणाए कट्टं वा लेद्वूणं वा पडिलेहिउं पमजिउं, एवं आयाणे निक्खेवे अ खेलसिंधाणाए न विगिंचइ, विगिंचतो वा पडिलेहेइ पमज्जइ य, जत्थ चिढति तत्थ वि गुत्तिनिरोहं करेइ । एयाइ विहीए गंता तिविहेण नमिझण साहुणो पच्छा सामाइयं करेइ, करेमि भंते ! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्छक्ष्यामि जाव साहू पञ्जुवासामि दुविहं तिविहेण ति काउं, पच्छां इरियावहियाए पडिकमइ ।

पच्छा आलोएता वंदइ आयरिआइ जहा रायणियाए, पुणो वि
गुरुं वंदिता पडिलेहिचा निविठो पुच्छइ पढाइ था, एवं चेहण्यु वि।
जया सगिहे पोसहसालाए था तत्य नवरि गमणं नत्यि। तो इट्टी-
पत्तो सो सविधुर्वीए एइ, तेण जणस्म अत्या होइ, आदिआ सा-
दुणो सुषुरिसपरिगणेण। जइ सो कयसामाइओ एइ ताहे आस-
दत्यिमाई जाणेण अहिगरणं न बहुइ ताहे न करेइ, कयसामाइ-
पण य पाणहि आगरउच्च तेण न करेइ। जइ सो सावच्चो तो न
कोइ उद्देइ। अह अहाभइओ पूछा कया होउ ति भण्यति ताहे
पुञ्चरहयं आसण कीरइ, आयरिआ य उठिआ अच्छंति, तत्य
उठेंत—अगुह्यें दोसा विभासियच्या। पच्छा सो इट्टीपत्तो सामा-
इयं करेइ अणेण विदिषा, करेमि भते। सामाइयं सावजं जोरं
पश्यकरामि दुविह तिविहेण जाव नियम पञ्चुवासामि, इति। एवं
सामाइय काढं पडिकंतो वदिता पुच्छइ। सो अ किर सामाइयं
करेतो मउडं अवणेइ, कुटलाइ नाममुदं पुण्य नवोलं पावारण-
माई वोसिरइ। एसो विही सामाइयस्त ” ॥ ६५ ॥

अस्तैवातिचारनाह—

भणुवयणकायदुष्पणिहायं इह जत्तभी विचक्षेइ।

सइश्चकरणयं अथवाद्वियस्त तद्य अकरणयं चेव ॥ ६६ ॥

“ भणु ” गाहा व्याख्या—‘ मनोवचनकायदुष्पणिधानं ’
मनःप्रभृतीनां सावद्यानां प्रवर्तनमित्यर्थः, ‘ इह ’ सामायिके ‘ य
स्त्रत ’ आइरेण ‘ विचज्यति ’ परिहरते। श्रयोऽमी अतिचारा—
‘ स्वल्पकरणं ’ स्त्रते;—सामायिकविचारा अनासेवनम्, एतदुक्तं

भवति—प्रयत्नप्रमादान्त्रेवं स्मरति, अस्यां वेलायां सामायिकं कर्त-
न्यं कृतं न कृतमिति वा, स्थितिमूलं हि मोक्षानुष्ठानम् । अनव-
स्थितकरणं—करणानन्तरमेव त्यजति, यथाकथविद्वाऽनवस्थितं क-
रोतीत्यनवस्थितकरणं वर्जयतीति । ‘ चः ’ समुच्चयार्थः । ‘ एवः ’
अवधारणे । अयमत्र भावार्थः—“ सामाइयं ति काउं, घरचिंतं
जो उ चिंतए सङ्गे । अद्वसद्वोवगश्चो, निरत्ययं तस्स सामइयं
॥ १ ॥ कयसामइओ पुञ्चिव, तुद्धीए पेहिऊण भासिज्ञा । सइ नि-
रवज्ञं वयणं, अणणह् सामाइयं न भवे ॥ २ ॥ अनिरिक्षिया-
पमज्जिअर्थंडिल्ले ठाणमाइ सेवेतो । हिंसाऽभावे वि न सो, कडसा-
मइओ पमायाओ ॥ ३ ॥ न सरइ पमायजुत्तो, जो सामइयं कया
हु कायब्बं । कयमकयं वा तस्स हु, कयं पि विफलं तयं नेयं
॥ ४ ॥ काऊण तक्खणं चित्रा, पारेइ करेइ वा जहिच्छाए । अ-
णवष्टिअसामइयं, अणायराओ न तं सुद्धं ॥ ५ ॥ ” ॥ ६६ ॥

उक्तं सातिचारं प्रथमं शिक्षाब्रतम् । सांप्रतं द्वितीयमाह—
दिसिवयगहियस्स दिसापरिमाणस्सेह पइदिरणं जं तु ।
परिमाणकरणमेयं, अवरं खलु होइ विन्नेयं ॥ ६७ ॥

“ दिसिवय ” गाहा व्याख्या—दिग्ब्रतमुक्तस्वरूपम्, तत्र
गृहीतस्य दिक्षपरिमाणस्य दीर्घकालिकस्येति गम्यते, ‘ इह ’ आव-
कधर्मे ‘ प्रतिदिनं ’ अनुदिवसम्, एतज्ञोपलक्षणं प्रतिप्रहरादेः,
‘ यत्तु ’ यत्पुनः ‘ परिमाणकरणं ’ संक्षिप्ततरदिक्षप्रमाणमहणमि-
त्यर्थः, ‘ एतत् ’ एवंविधं परिमाणकरणं ‘ अपरं ’ अन्यहृतीयं

रिषयित देशावशाशिक देशो—दिग्ब्रहगृहीतपरिमाणविभागे—
यकारो देशावशाशा , तेन निर्वृत्त देशावशाशिक मन्त्रिति विहेयम् ।
शति गायार्थं ॥ ६७ ॥

अत्राविचारनाह—

षट्अर इह आलयण्प्रभोगपैसप्यभोगय चेत् ।

सदागुरुस्वचाय, तद वादियापीगमलक्ष्मेव ॥ ६८ ॥

“ षट्टङ्क ” गाहा व्यादया—शत्र्यंयति ‘ इह ’ द्वितीयरिशा-
ग्रवे आनयनप्रयोगपद्यप्रयोगतां चेत् राज्ञानुपात स्पानुपात तथा
यदि पुद्गलप्रसीपम् इनि सूक्ष्मानुगृते प्राकृतत्वात् पद्धतना । मा
र्यार्थस्तु—इह विशिष्टावधिके भूदेशावपहे परत स्वय गमनायो-
गाद् यदन्य सधिच्छार्द्धव्यानयने प्रयुक्त्यने सूक्ष्माकप्रदानादिगा त्वये-
दमानेव इत्ययमानयनप्रयोग । तथा प्रेष्यप्रयोगः यथा—अभिगृही
तप्रविचारदेशाव्यतिकमभयादयत्यमेव गत्या त्वया मम गवायाने
यम्, इद चा तत्र कर्तव्यम् इत्येवमूल । तथा राज्ञानुपात—स्वगृह
शृतिप्राकारादिष्यवनिलभग्नभूदेशाभिपहे यदि: प्रयोजनतोत्तमौ तत्र
स्वय गमनायोगात् शृतिप्राकारप्रत्यासमवर्तिनो शुद्धिष्ठूर्वक छुत्कारी
कादिशब्दकर्येन समवसितकान् योपयत्, राज्ञानुपात—
राज्ञस्यानुपातन—उक्तारण राज्ञानुपात लाट्टग् येन परकीय
भवणुविवरमउपतत्वसाधिति । तथा स्पानुपातः—अभिगृहीतदेशा
द्वादि प्रयोजनभावे राज्ञमनुपातार्थत एव परेषा समीपानयनाये
स्वरारीरस्यप्रदर्शनं स्पानुपात । तथा यदि 'पुद्गलप्रसीप—अ
भिगृहीतदेशाद्वाहि प्रयाननभावे परेषा प्रशोपनाय लेष्वादित्तेष पुद्र

लप्रक्षेपः इति भावना । देशावकाशिकमेतदर्थमभिगृह्णते—मा भृहदि-
गंभनाऽस्त्रभनादिव्यपारजनितः प्राण्युपमर्द इति, स च स्वयंशु-
तोऽन्येन वा कारित इति न कश्चिन् फले विशेषः, प्रत्युत गुणः
स्वयंगमने, ईर्योपयविशुद्धेः, परस्य पुनरनिपुणत्वान् तदशुद्धिः ।
इति गाथार्थः ॥ ६८ ॥

उक्तं सातिचारं द्वितीयं शिक्षाव्रतम् । सांप्रतं तृतीयमुच्यते—
आहारदेहसकारवंभवावारपोसहो अन्नं ।

देसे सब्वे य इमं, चरमे सामाइयं नियमा ॥ ६९ ॥

“आहार” गाहा व्याख्या—‘आहार—देहसकार—ब्रह्म—अव्यापा-
रपौपधः’ इति इह पौपधशब्दो स्वदेहा पर्वत्सु वर्तते, पर्वाणि चाष्ट-
म्यादितिथयः पूरणात्पर्यं धर्मोपचयेऽतुल्यादित्यर्थः । पौपधशब्दश्चायं
प्रत्येकमभिसंबध्यते, आहारपौपध इत्यादि । ‘अन्यत्’ अपरं
तृतीयं पौपधोपवासशिक्षाव्रतमित्यर्थः । ‘देशे’ देशविषयं ‘सर्व-
स्मिन्’ सर्वविषयम्, ‘चः’ समुद्देशे, ‘इदं’ पौपधोपवासशिक्षाव्रतं
‘चरमे’ सर्वतोऽव्यापारपोपयेऽद्विकृते ‘सामायिकं’ उक्तस्वरूपं
करणीयमिति गम्यते, ‘नियमात्’ अवश्यंतया, अन्यथा सामा-
यिकगुणाभाव इति पदघटना । तत्राहारः—प्रतीतः तद्विषयस्तत्रिमि-
त्तो वा पौपध आहारपौपधः, आहारादिनिवृत्तिनिमित्तं धर्मपूरणं
पर्वति भावना । एवं शरीरसत्कारपौपधः । ब्रह्मचर्यपौपधः, अत्र
चरणीयं चर्यम्, “अचो यत्” इत्यस्मादधिकारात्, “गदमद-
चरयमश्चानुपसर्गे” (पा०-३-१-१००) इति यत् । ब्रह्म-

कुशलानुष्ठानम् । यथोळम्—“ ब्रह्म देवो ब्रह्म तयो, ब्रह्म स्नानं च
शाश्वतप् । ” ब्रह्म च तत्त्वं चेति समाप्तं, शोप पूर्ववत् । सधाऽ-
न्वापारपीपथ इति, एत्य भावत्यो पुण्य इमो—आहारपोसहो दु
विहो, देसे सब्बे य । देसे अमुगा विगई आयनिल वा एकासि वा
दो वा । सब्बे चडिक्किहो आहारे अहोरत्त पञ्चकलाणे वत्याभरणपरि
चागो य, सो वि देसे सब्बे च । देसे अमुग सर्वरमकार न करेमि
मच्चे मठर न करेमि ति । यमचेरपोमहो वि देसे सब्बे अ । देसे
दिवा रक्षि वा एकासि वा दो वा बारे ति । सब्बे अहोरत्त यमयारी
द्वयद । अन्वाचारपोसहो वि देसे सब्बे य । देसे अमुग वावार न
करेमि । सब्बे सब्ब वा वावार चेव हलसागडपरिकमाईय न
करेमि । एत्य जो देसे पोसह करेद्द सामाइय करेद्द वा न वा । जो
मच्चपोसह करेद्द सो नियमा क्यसामडच्चा । जइ न करेद्द ता नि
यमा वचिजाइ । त काहि करेद्द ? चेइयपरे वा साहुमूले वा घरे वा
पोमहसालाए वा उम्मुक्कमणिमुखणो पटतो षोत्यय वा वायतो ध-
म्मगम्मण भायद । जहा एए साहुगुणे अह न समत्यो भद्रभग्गो
थारेड विभासा ” ॥ ६६ ॥

अन्वानिचारनाह—

अप्पाडिदुप्पाडिलेहियपमजसेज्जाह वज्जई इत्य ।

संमं व अणणुपालाणमाहाराईमु सब्बेसु ॥ १०० ॥

“ अप्पाडि० ” गाहा व्याख्या—“ अप्पाडिदुप्पाडिलेहि-
अपमजसेज्जा ” इति सूचनात् सूत्रमिति न्यायात् प्राकृतानुयोधाचाय-

मर्यः—अप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितशस्यासंस्तारकौ तथा अप्रमार्जितदुष्प्रमार्जितशस्यासंस्तारकौ वर्जयतीति योगः । इह च शस्या प्रतीता, संस्तीर्यत इति संस्तारकः—पौपथब्रत उपयोगी दर्भकुशकम्बलविष्णु-दिः, तयोश्चाप्रत्युपेक्षणं—गोचरापन्नयोश्चक्षुपाऽनिरीक्षणं दुष्टं—उद्भ्रान्तचेतसः प्रत्युपेक्षणम्, ततश्चाप्रत्युपेक्षितदुष्प्रत्युपेक्षितौ च तौ शस्यासंस्तारकौ चेति समासः, शस्यैव वा संस्तारक इति । एवमन्यत्राप्यक्षरगमनिका कार्येति । उपलक्षणं च शस्यासंस्तारकौ, उपयोगिनः पीठकादेरपि । एत्यु पुण सामायारी—“ कदपोसहिंश्रो नो अप्प-डिलेहिश्र सेजं दुख्खहइ, संथारणं वा दुख्खहइ, पोसहसालं वा सेवहइ, दन्धवत्थं वा सुद्धवत्थं वा भूमीए संथरइ, काइयभूमीओ वा आग-ओ पुणरवि पडिलेहेइ, अणणहा अझ्यारो । एवं पीढगाइसु वि-विभासा ॥ ” तथा प्रमार्जनं—शस्यादेव्विष्णुपान्तादिना तद्करणमप्र-मार्जनम्, ‘ सम्यग् वाऽननुपालनम् ’ यथावदविधानं ‘ आहारा-दिषु सर्वेषु ’ प्रागुद्दिष्टेषु । इति गाथार्थः ॥

एत्यु भावणा—कयपोसहो अधिरचित्तो आहारे ताव सब्बं देसं वा पत्थेइ, वीयदिवसे पारणगस्स वा अपण्णो अद्वाए आदत्तिं करेइ कारवेइ वा, इमं इमं व त्ति करेह न वट्ठइ । सरीरसकारे स-रीरं उब्बट्टै, दाढिआओ केसे वा रोमाइं वा सिंगाराहिप्पाएणं संठवेइ, दाहे वा सरीरं सिंचइ, एवं सब्बाणिं सरीरभूसाकारणाणि परिहरइ । वंभचेरे इहलोइए पारलोइए वा भोगे पत्थेइ संवाहेइ वा, अहवा सद्फरिसरसरुवगंधा अभिलसइ, वंभेचरपोसहो कया पूरिही, चइयामो वंभचेरेणं ति । अब्बावारे सावज्जाणि वावारेइ,

णमभादेरदानयुद्ध या मातृस्थानते एव । 'मवितपिधानं' सवि-
क्षेन—कलादिना पिधानं—रथगनमिति समाप्तः, भावना प्राग्बत् ।
'पालाविकमः' इति कालस्थातिकम कालाविकम—इत्युचितो यो मि-
क्षाकाल माधूनां समनिकम्य—अविलङ्घ्यानागत या भुक्ते, तदा च
किं सेन लब्धेनात्पि ? कालाविकान्तत्वात् । तदुकम्—“काले दिल्ल्य-
स्म पद्मेणयस्त आयो न तीरण कावं । तस्मैव अथकपणामिभस्त
गिरहृतया नरिय ॥ ” 'परन्यपदेशः' इति आत्मव्यविरिक्तः परः
तस्य छ्यपदेशः परन्यपदेश इति समाप्त । माधोः पीपधोपवासपा-
रणकाले भिक्षायै समुपास्थितस्य प्रवटमन्नादि परददः आवक्त्रभि-
षते परकीयमिदमिति नास्माकीनमतो न षदामि किञ्चित्, याचितो
धाऽभिषते विद्यमान एवामुकस्येऽमसि तत्र गत्वा मार्गंत यूथमिति ।
मात्सर्यमिति—याचितः कुञ्जिति, परोन्नतिवैमनस्यं वा मात्सर्यं इति
सेन तावद् द्रुमकेण याचितेन दक्षं किमहं ततोऽपि न्यून इति मा-
त्सर्याददाति, कपायकलुपितेन वा चित्तेन वा ददतो मात्सर्यम् ।
इति गाथार्थ ॥ १०२ ॥

यक्तं सातिथार चतुर्थं शिळाश्रवणम् । तदुक्ती चोकानि द्वाद-
शापि आषकत्रतानि । साप्रत तत्राविचारोत्तिमेव शोधयति । ननु
यद्यविचारण अपि परिहाराविषयीयावेनात्राभिषीयन्ते किमिति तेया-
मपि अतानामिष प्रत्याख्यानं श्रिधाविषयादिविभागेन न प्रदर्शितमिति
मनस्थापायाह—

एत्थं पुण अद्यारा, नो परिसुद्धेसु इुंति सञ्चेसु ।
अकरुंडविरद्भावा, वडाइ सञ्चरथश्चो भाणियं ॥ १०३ ॥

“ एत्यं ” गाहा व्याख्या—‘ अत्र ’ एतेषु प्राणातिपाता-
दिक्षतेषु, पुनःशब्दो विशेषणे, अतिचारगतमेतद्व विशेषितमभि-
धातव्यमित्यर्थः । ‘ नो ’ निषेधे, ‘ परिशुद्धेषु ’ विवन्धककर्मानु-
द्यागततात्त्विकविरतिपरिणामप्रतिपत्तेषु ‘ भवन्ति ’ जायन्ते ‘ स-
र्वेषु ’ द्वादशस्त्वपि । हेतुमाह—‘ अखण्डविरतिभावात् ’ परिपूर्ण-
देशविरतिसङ्घावतः, नहि परिपूर्णदेशविरतिसङ्घावे वधादिग्रतिप-
त्तिर्भवतीति भावः । वर्जयति, अत्र इतिशब्दाध्याहारो दृश्यः, वर्ज-
यतीत्येवं ‘ सर्वत्र ’ सूत्रे । ‘ अतः ’ यतोऽखण्डविरतिभावाद् वधा-
दिग्रवृत्तिर्भवतीति भवत्येव अस्माद्वेतोः ‘ भणितं ’ उक्तम् । इदमुक्तं
भवति—यद्यप्यतिचाराणां पृथक् प्रत्याख्यानं नोकं तथापि प्राणि-
वधादिग्रत्याख्यान एव शुद्धिप्राप्ते प्रत्याख्यातुर्वधवन्धाद्यतिचारपरि-
हारप्रवणैव प्रायः प्रवृत्तिः स्यादतो ब्रतप्रत्याख्यानमेवंविधविषय-
व्यापीति नातिचारा अत्र पृथक् प्रत्याख्येयतयोच्यन्ते, किन्त्वेवंवि-
धविरतौ वधादिस्फुप्ता प्रवृत्तिर्भवतीति ज्ञापनाय सर्वत्रातिचारान्
वर्जयतीत्युच्यते । इति गाथार्थः ॥ १०३ ॥

ननु यद्येवं विरतिविवन्धककर्मङ्गासवशागतविरतिपरिणामे
स्वरसत एव वधादिपरिहारप्रवणैव प्रवृत्तिर्विरतिमतस्तहिं तस्येदं
विरतिविषयादिनिरूपकसूत्रं किंफलं देशविरतिं प्रति स्यात् ? इत्याह-

सुत्ता उवायरक्षणगहणपयत्तविसया मुण्येयव्वा ।

कुंभारचक्रभामगदंडाहरणेण धीरेहिं ॥ १०४ ॥

“ सुत्ता ” गाहा व्याख्या—‘ सूत्रात् ’ आगमात् उपाय-
रक्षणादयः कुम्भकारचक्रभामकदण्डोदाहरणेन धीरैर्ज्ञातव्या इति

योग । तत्रोपायेन रक्षणमुशायरक्षणम्, परियुक्तनलमहणादिप्रहये प्रयत्नो महणप्रयत्न, प्रवपदणार्थं चतुर्मासकारो पुन चुन अवणादिविषय आदरप्रिय । सच्चलविषयीकृतप्राणयादिरूप उपायरक्षणादीना धार्थस्ते उपायरक्षणादय सूत्राद् प्रावच्या । कथम् ? कुम्भकारचक्रधामक्षदृष्टोदाहरणेन । इहमत्र इदयम्—यदा किल कुम्भकारचक्रस्याभ्यमतो भ्रमतो वा इरडो भ्रमणतत्पैर्यनिवन्धनमेव भवति, एवमिहापि सूत्रेणोपायरक्षणादयो निरूप्यमाणा विरति परिणामेऽसति गति च सभवद्विरतेकुमतो गुणङ्गता एव । इह केचिद् विषयादिपदानि पञ्चानुपूर्व्यां विमागेनान्यथाप्रपि व्याख्याते, इह तु प्रतिपचिलाघवायेत्यमेव व्याख्यावानानि । इति गामार्थं ॥१०४॥

प्रश्निर्दिशोदाहरणमेव समर्थयति—

गहणा उचरि पयत्ता, होइ असतो वि विरहपरिणामो ।

अद्वृतसलकमोदयथो, पठइ अवक्षाइ लिंगमिद ॥ १०५ ॥

“ गहणा ” गाहा व्याख्या—‘ पहणादुपारि ’ “ गुरुमूले ” त्यादिसूत्रनिदर्शितवोपादानोत्तरकालाभित्यर्थ, ‘ प्रयत्नान् ’ चुन पुन अवणादयात्, किम् ? ‘ भवति ’ जायते ‘ अस अपि विरतिपरिणाम ’ अविद्यमानोऽपि कर्मज्ञासनिवधनस्तास्ति को विरत्यभवसाय, अनेन च सूत्रादुपायरक्षणादयो निरूप्यमाणा विरतिपरिणामेऽसति तदुत्तादका भवन्तीत्यादेन्ति भवति । सति तु सत्र फलमाह—‘ अकुराजकमोदयत ’ अगुम्भपायादिकमानुभावान् ‘ धति ’ अपदाति विरतिपरिणाम इति प्रकृतम्, अत सूत्रादुपायरक्षणादयस्तलित्यरत्नानिवन्धना भवन्तीत्यभिप्राय । सत्र अति-

पतिते चिह्नमाह—अवर्णः—अश्लाघा अवज्ञा वा—अनादर आदिर्यस्य
तत्तथा, आदिशब्दात्तद्रक्षणोपायाप्रवृत्त्यादि च ‘लिङ्गं’ चिह्नं
‘इह’ ब्रतपरिणामपरिपाते । इति गाथार्थः ॥ १०५ ॥

अतस्तस्यासत उत्पादनाय सतः स्थैर्याय यद्विधेयं तन्निग-
मनद्वारेणाह—

तम्हा निच्चिसईए, वहुमाणेणं च आहिगयगुणम्भि ।

पडिवक्तव्यदुरुच्छाए, परिणाहालोयणेणं च ॥ १०६ ॥

“तम्हा” गाहा व्याख्या—यस्मादेवमसन् भवति संश्व-
प्रमादात् परिपतति विरतिपरिणामस्तस्मात् नित्यं—सदा स्मृत्या—आ-
धिकृताविस्मरणेन, ‘वहुमानेन च’ भावप्रतिवन्धेन च ‘आधिकृ-
तगुणे’ सम्यक्त्वागुप्रतादी, ‘प्रतिपक्षजुगुप्सया’ मिथ्यात्वप्राणि-
चयाद्युद्वेरोन, ‘परिणत्यालोचनेन च’ मिथ्यात्वप्राणिवधादीनां “दा-
रणफला एते” इति विपाकालोचनेन । इति गाथार्थः ॥ १०६ ॥

तथा—

तित्थंकरभर्तीए, सुसाहुजणपञ्जुवासणाए य ।

उत्तरगुणसद्वाए, एत्थ सया होइ जइयच्चं ॥ १०७ ॥

“तित्थंकर” गाहा व्याख्या—‘तीर्थिकरभर्त्या’ परम-
गुरुविनयेन ‘सुसाधुजनपर्युपासनया च’ भावयतिसेवतया च
‘उत्तरगुणश्रद्धया च’ सम्यक्त्वे सत्यगुप्रताभिलापेण तेषु सत्सु
महाव्रताभिलापेण च ‘अत्र’ विरतिव्यतिकरे ‘सदा’ सर्वदा
भवति ‘यतितव्यं’ उद्यमः करण्यायः । इति गाथार्थः ॥ १०७ ॥

एवमसंतो रि इमो, जायद जाश्वो रि न पठुद क्याई ।
ता इत्यं बुद्धिमया, अपमामो हौद कायव्यो ॥ १०८ ॥

“ एव ” गाहा उयाइपा—‘ एवं ’ उत्त्यायैन प्रहृती
· अमप्रपि · अविनामानोऽपि ‘ अवं ’ विरतिपारिष्णामः ‘ जायते ’
भवति, ‘ जातश्च ’ संप्रप्रथ · न पतनति कदाचिन् ’ नापैति कदाचि-
दपि, ‘ तन् ’ तमात् ‘ अत्र ’ नित्यरमरणात् ‘ बुद्धिमता ’ दी-
मना · अप्रमाद् ’ उपमो भवति कर्मद्यः । इति गायार्थः ॥ १०९ ॥
उत्ताप्रतानामेवा उवधिविशेष निर्दर्शयन्नाह—

एत्थ उ सावगधम्मे, पायमणुव्ययगुणव्ययादै च ।

आदकदियादै मिकरावयादै पुण्य इवरादै ति ॥ १०९ ॥

“ एत्थ ” गाहा उयाइपा—‘ अत्र ’ एत्यमिन् प्रस्तुते
आवानधर्म इति योगः, ‘ तुः ’ अवधारणे, अप्रैव न शाक्यादि-
धर्मे, ‘ प्रायः ’ वाहूहयेन, प्रायोगदण्डेन परिमहत्वादौ चतुर्मासका
दिव्यप्रमाणवधिमाह । ‘ अग्नुश्वरगुणवत्तानि च ’ इति पञ्चाशुप्रतानि
प्रतिषादितस्वस्त्वाणि श्रीयि गुणवत्तानि उक्तलक्षणान्येव ‘ यावत्क-
यिकानि ’ इति भक्तद्विद्वानानि यावत्क्षिमपि धारणीयानि, “ न
तु नियोगतो यावत्क्षिमेव ” इति शुरवो उयाचक्षते, प्रतिचतुर्मास-
कमपि लद्धिः, बुद्धप्रत्यरायावत्तथासामाचार्युपलब्धे । ‘ शिशाश्वता
नि पुनरित्वयणि ’ इति शिशा-अभ्यासस्त्वस्या इत्यानि शिशाश्र-
नानि इत्वरण्णाति-इत्वरकालानि । तत्र प्रतिदिवसानुष्टुपे सामा-
यिकेशायकाशिके पुन उन्नत्यार्थते इति भावना, पौपधोपवासा-
तियिसविभागी तु प्रतिनियतदिवसानुष्टुपे न प्रतिदिवसाचरणी-

यो । इति गाथार्थः ॥ १०६ ॥

एवं द्वादशविधेऽपि श्रावकधर्मेऽभिहिते संलेखनाभिधाना-
वसंरस्तत्राह—

संलेखणा य अन्ते, न नियोगा जेण पञ्चयद् कोई ।

तम्हा नो इह भणिया, विहिसेसमिमस्स घोच्छामि ॥ ११० ॥

“ संलेखणा ” गाहा व्याख्या—‘ संलेखना ’ चरमानश-
नपूर्वक्रियाख्या आगमप्रसिद्धा ‘ अन्ते ’ जीवितपर्यवसाने संभवि-
नी, न ‘ नियोगात् ’ अवश्यंतया ना गृहिणः संभविनी । कारण-
माह—येन कारणेन ‘ प्रब्रजति ’ यतिर्भवति ‘ कोऽपि ’ तथाविधिवि-
रतिपरिणामवान् गृही ‘ तस्मात् ’ अतो हेतोः ‘ नो ’ नैव ‘ इह ’
अत्रावसरे ‘ भणिता ’ प्रतिपादिता । ‘ विधिशेषं ’ श्रावककर्तव्य-
मेवानुकूलं ‘ अस्य ’ श्रावकस्य ‘ वद्ये ’ अभिधास्ये । इति गा-
थार्थः ॥ ११० ॥

तमेवाह—

निवसेज्ज तत्थ सङ्घो, साहूणं जत्थ होइ संपाओ ।

चेइयहराइँ य जम्मि, तयन्नसाहमिया चेव ॥ १११ ॥

“ निवसेज्ज ” गाहा व्याख्या—‘ निवसेत् ’ आवसेत्
‘ तत्र ’ नगरादौ ‘ श्राद्धः ’ श्रावकः साधूनां यत्र भवति ‘ संपा-
तः ’ संपत्तनं संपातः—आगमनमित्यर्थः । चैत्यगृहाणि च यस्मिन्,
तदन्यसमानधार्मिकाश्वेव श्रावकादयः, इति गाथार्थः ॥ १११ ॥

एवंविधस्थाने निवसने कि फलम् ? [इति चेदुच्यते—

१ “—वसंरस्तत्रमाह ” व ।

गुणानां शृदिः । तथा] चेदमभिहितमन्यत्र—“ साहृषु वंदयेण,
नासाइ पावं अगारिआ भावा । कामुअदाणे निज्ञार, उपगाहो ना
णमार्शेण ॥ १ ॥ मिष्ठारं साणुमहणं, सम्मदं साणुविमुद्दिदेऽ च ।
चिदवद्याइविद्या, पदण्ठां वीयरागेहि ॥ २ ॥ साहृमिम्ब्रयि-
रकरणे, वच्छल्लं सासणम्भ सारो ति । मग्नमहायत्तलुओ, तहा
अनामो अ धम्माओ ॥ ३ ॥ ” तत्रापि प्रतिदिनशर्तव्यमाह—
नवकारेण विशोहो, अणुसरणं सावगो वयादम्भि ।

जोगो चिइनंदण मो, पद्यकस्ताणं च रिहिषुब्वं ॥ ११२ ॥

“ नवकार ” गाहा व्याख्या—‘ नमस्कारेण विशोध ’
इति सुप्रोत्थितेन नमस्कार पठिनव्य । तथाऽनुभ्वरणं कर्तव्य
भावकोऽर्थमिति, प्रतादी विषये स्मरणम् । प्रतानि च मे इतिपाठ ।
सतो योगः कायिकादि । ‘ चैत्यवन्दन ’ इति प्रथलेन चैत्यव
न्दन कर्तव्यम् । सतो गुर्बादीनि अभिष्वन्न प्रत्याह्यानं च ‘ विधि
पूर्वक ’ सम्यगाकारशुद्ध ग्राहणम् । इति गाथार्थ ॥ ११२ ॥

ततः—

तह चेद्दहरणमणं, सकारो वंदणं गुहसगासै ।

पद्यकस्ताणं सवण्यं, जइपुच्छा उचियकरणिजं ॥ ११३ ॥

“ तह ” गाहा व्याख्या—‘ तथा चैत्यगृहणमनं ’ तथा-
विधिनैव पद्यविधाभिगमाराधनेन चैत्यगृहणमनं-जिनपित्त्वसदन-
प्रवेशः । तदुभ्यम्—“ सवित्ताण द्वच्छाणं विडस्तगणयाए, अ
वित्ताण द्वच्छाण अविडस्तगणयाए, गग्निराडिपण चत्तरासगोण,

१ “ अलुग्नहो ” अ ।

चक्खुप्फासे अंजलिपगगहेणं, मणसो एगतीभावेणं । ” तत्र च ‘सत्कारः’ माल्यादिभिरस्यर्चनमर्हत्प्रतिमाया इति गम्यते, ‘वन्दनं’ प्रतीतिं चैत्यवन्दनविधानेन, ततो गुरुसकारो ‘प्रत्याख्यानं’ स्वयं गृहादिगृहीतप्रत्याख्यानस्य गुरुसाच्चिकत्वविधानमित्यर्थः, तत्रैव श्रवणमागमस्येति गम्यते, तदनन्तरं ‘यतिपृच्छा’ साधुशरीरसंयमवार्ताप्रिच्छनम्, तत्र च ‘उचितकरणीयं’ यतेगर्लानत्वादावौपथप्रदानोपदिशनादि विधेयम् । इति गाथार्थः ॥ ११३ ॥

ततः—

अविरुद्धो ववहारो, काले तह भोयणं च संवरणं ।
चेद्द्विहरागमसवणं, सकारो वंदणार्ह य ॥ ११४ ॥

“ अविरुद्धो ” गाहा व्याख्या—‘ अविरुद्धो व्यवहारः ’ प्राक्प्रदर्शितपञ्चदशकर्मादानपरिहारेणाल्पावद्यप्रवृत्तिरित्यर्थः । ‘काले’ अवसरे देहारोग्यानुगुणे प्रत्याख्यानतीरितसमयस्वरूपे ‘तथा’ भणितविधिना । यदुक्तम्—“ उचिया य दाणकिरिया, भावनिओगो अ होइ कायच्चो । नायं पिचीलिगाणं, एत्यं च परिगग्हेक्षायां ॥ १ ॥ उचिअत्तेण पवित्री, ठाणुववेसो अ नियमसरणं च । तदहिगकिरिया विहिणा, वणलेबुवमाण उबभोगो ॥ २ ॥ ” इत्येवं । ‘भोजनं’ आहाराभ्यवहारः । ‘चः’ समुच्चये । ‘संवरणं’ तदनन्तरं संभवतो ग्रन्थिसहितादेः प्रत्याख्यानस्य ग्रहणमित्यर्थः । ततोऽवसरे ‘चैत्यगृहगमनं’ स्वगृहादर्हदायतने यानम्, श्रवणं सिद्धान्तोपदेशादेः साधुसमीप इति गम्यते । सत्कारो वन्दनादिश्चार्हचैत्यानां प्रस्ताव इति गम्यते । श्रवणविषयीकृतसाधूनां

या, यत्सेपामपि वन्दनावसरे प्राक्प्रदर्शिताभिगमोऽभिहित एव
यद्वा श्वेषपदात् प्रागेव सत्त्वारवन्दनान्पदयोगोऽर्थसो दस्य,
तेनाहं द्विस्वविषयमेव सत्कारादि । इति गाथार्थः ॥ ११४ ॥

तत्र—

जइविस्सामणमुचिओ, जोगो नवकारचितणाईओ ।

गिहिगमयं विदिसुवर्णं, सरणं गुहदेवयाईशं ॥ ११५ ॥

‘ जइ ’ गाहा व्याख्या—‘ यसिविभ्रमण ’ साधुनां वेय-
त्रृत्यस्वाक्ष्यायादिशान्ताना पुष्टकारणात्तथाविधभावकादपि देहस्वेदा-
पनोदनभिच्छवता तदपतयन करणीयमिति गम्यते, प्राकृतत्वाच आ
म्यतेहपान्तदीर्घत्वम् । यद्वा विभ्रान्यतः प्रथोग इति शत्रन्तस्य
णिचि ल्पुटि च विभ्रामणमिति च भवनि । ‘ उचितः ’ स्वभूमि
कायोग्यं ‘ योग ’ व्यापारं । तमेवाह—नमस्कारचिन्तनादिकः,
आदिशब्दात् परिपठितप्रकरणगुणनादिपरिमहः । ततो ‘ गृहगमन ’
निजवेशमगमनम् । तत्र च ‘ विभित्वपनं ’ विभिना शयनक्रिया ।
तमेवाह—‘ स्मरण ’ मनासि धारणम्, उपलक्षणात्वादस्य गुणवर्ण-
नादि च ‘ गुरुदेवतादीनाम् ’ गुरुणा—धर्मदायकाना देवताना च-
अर्हताम्, आदिशब्दादन्येष च धर्मोपकारकाणा प्रत्याक्ष्याना-
दीना च स्मरणम् । इति गाथार्थः ॥ ११६ ॥

तत्र च—

अर्बमे पुण विर्दे, मोहदुगद्धा सत्तचित्ताय ।

इत्यीकडेवराणं, तव्विरणमुं च बहुमाणो ॥ ११६ ॥

“ अर्बमे ” गाहा व्याख्या—‘ अग्रद्ययि ’ ऋषिरिभोग-

लक्षणे, पुनःशब्दा विशेषणे, मुख्यमार्गं विशिनाइ । तदुक्तम्—
 “ उत्सर्गव्रह्यचारित्वमसेवा पारिणामिकम् । अवश्यं तेन कर्तव्यं,
 दुरन्तः कामविड्वरः ॥ १ ॥ ” इति । ‘ मोहजुगप्सा ’ स्त्रीपरि-
 भोगहेतुवेदादिमोहनीयनिन्दनम् । यथा—“ यज्ञजनीयमतिगोप्य-
 मदर्शनीयं, वीभत्समुल्वणमलाविलपूतिगन्धि । तद् याचतेऽङ्गमिह
 कामकृमिस्तदेवं, किं वा दुनोति न मनोभववामता सा ॥ १ ॥ ”
 इत्यादि । ‘ स्वतत्त्वचिन्ता च ’ स्त्रीकडेवराणां वस्तुतत्त्वपर्यालो-
 चनं वा योपिदङ्गानाम् । तदुक्तम्—“ का श्रीः श्रोण्यामजस्त्रं श्रव-
 छुद्रदरीपूतिसान्द्रवायां ?, का शोभा भूरिमांसोङ्गवगङ्गुपु निपा-
 तोन्मुखेषु स्तनेषु ? । का वा लीला सुलीलाचलितजललवालोल-
 केष्वीक्षणेषु ?, लीणां किं चास्ति रम्यं वदत् वुधजनाः ! यत्र
 सक्ति विदध्मः ? ॥ १ ॥ ” शुक्रशोणितसंभूतं, नवच्छ्रद्रं मलोल्वणम् ।
 अस्थिश्वलिकामात्रं, हन्त योपिच्छ्ररीरकम् ॥ २ ॥ ” इत्यादि ।
 ‘ तद्विरतेषु च ’ अव्रह्यविरतेषु च यतिषु वहुमानः—अन्तरङ्गप्रीति-
 रूपः । यथोक्तम्—“ तीरात्तीरमुपैति रौति करुणं चिन्तां समा-
 लस्वते, किञ्चिद् ध्यायति निश्चलेन मनसा योगीव युक्तेक्षणः । स्वां
 छायामवलोक्य कूजति पुनः कान्तेति मुग्धः खगो, धन्यास्ते भुवि-
 ये निवृत्तमद्ना धिग् दुःखिताः कामिनः ॥ १ ॥ तणसंथारनिस-
 रणो, वि मुणिवरो भट्टरागमयमोहो । जं पावइ मुत्तिसुहं, कत्तो तं
 चक्कवट्टी वि ? ॥ २ ॥ जं विसयचिरत्ताणं, सोक्त्वं सज्जायभावि-
 यमईणं । तं मुणइ मुणिवरो चिय, अगुहवओ न उण अणो
 ति ॥ २ ॥ ” इत्यादि । इति गाथार्थः ॥ ११६ ॥

सुचविउद्दस्त पुणो, सुदुमपयत्येसु चिचविजासो ।

मवठिद्विनिरूपणे वा, आहिगरण्योवत्समचिचे वा ॥ ११७ ॥

“ सुच ” गाहा व्याख्या—‘ सुप्रविदुदस्य पुनः ’ निश्च-
पगमेन जापतस्तु श्रावकस्य ‘ सूदुमपदार्थेषु ’ कमालं परिणामाद्यि-
‘ चित्तविन्यासः ’ मानसावेशानं करणीय इति गम्यते । ‘ भवति-
तिनिरूपणे ’ संसारसंभवद्वावपर्यालोचने चित्तविन्यास इति प्रकृ-
तम् । यथोक्तम्—“ पिता दासो दासो भवति जनको वन्धुरहितो,
रिष्वर्वन्धुर्माता भवति दुष्कृता साऽपि जननी । अनिष्टः स्तारिष्टः
परिणामति शर्माङ्गुखतया, जनो यिङ्क संसारे तदपि रमति नो विर-
मति ॥ १ ॥ ” इत्यादि । वाशद्वः पूर्वोपेत्या पक्षान्तरण्योवकः ।
‘ अधिकरणोपशमचिचे वा ’ प्रयुत्तरलहस्यामणापर्यालोचने वा,
कृप्यादीनि वाऽधिकरणानि । शेषं सुगमम् । इति गाथार्थ ॥ ११७ ॥

तथा—

अात्यपरिहाणीए, असर्मजसचेद्वियाणु व निवागे ।

सण्हामदीवणाए, घम्मागुणेसुं च विविदेसुं ॥ ? ? c ॥

“ आत्य ” गाहा व्याख्या—‘ आयुःपरिहाणी ’ प्रतिष्ठ-
णायुक्तक्षयलक्षणायां चित्तन्यास इति योग । यथोक्तम्—“ आ-
युरपूर्वापूर्वे, पूर्वोपास्यैरपाचमिदमनिश्च । सपतिवरां वीक्षातप-
परिदौपितरोपमम्भ इव ॥ १ ॥ ” अविहतगति समन्तान्, प्रति-
दिनमामन्त्रां समर्थ्येति । शत्युस्त्वपापि जानन्, विभूष्य स्वपि-
पि रजनीषु ॥ २ ॥ ” इत्यादि । ‘ असमञ्जसचेत्विहानां वा विषा-
के ’ इति असमञ्जसचिवाना—प्राणिकपादीताम्, वा शब्दः प्रावृत्,

विपाके—नरकादिद्वारेण फलदायकत्वे चित्तन्यास इति प्रतिपदमस्य योगः । यथोक्तम्—“ वहमारणश्रव्मक्षवाणदाणपरव्यग्निलोवणा-ईणं । सञ्चजहण्णो उद्ग्रो, दसगुणिओ इक्षसिक्याणं ॥ १ ॥ तिव्ययरे उ पओसे, सयगुणिओ सयसहस्रकोडीगुणो । कोटा-कोडिगुणो वा, हुज्ज विवागो वहुतरो वा ॥ २ ॥ ” ‘क्षणलाभदीप-नायां’ क्षणे—कालविशेषे स्तोकेऽपि काले इत्यर्थः, लाभस्य—कर्मनि-र्जरापुण्योपार्जनादेवीपना—प्रकाशना क्षणलाभदीपना तस्याम् । यथोक्तम्—“ जं अण्णाणी कम्मं, खबेह वहुआहिं वासकोडीहिं । तं णाणी तिहिं गुत्तो, खबेह ऊसासमित्तेणं ॥ १ ॥ जह चिरसं-चित्रमिधणमनलो पवणस्तहिओ दुअं डहइ । तह कर्मिधणममि-अं, खणेण ज्ञाणानलो डहइ ॥ २ ॥ ” तथा—“ नरएसु सुखरे-सु अ, जो वंधइ सागरोवमं एकं । पलिओवमाण वंधइ, कोडिस-हस्साणि दिवसेणं ॥ १ ॥ एस कमो नरएसु वि, बुहेण नाऊण नाम एञ्चं पि । धम्ममिमि कह पमाओ, निमेसमित्तं पि कायव्वो ? ॥ २ ॥ ” ‘ धर्मगुणेषु च विविधेषु ’ धर्मगुणेषु—ज्ञानादिगुणेष्विह-लोकपरलोकार्थसाधनेषु विविधेषु—वहुविधेषु । यथोक्तम्—“ जीवं-तस्स इह जसो, कित्ती य मयस्स परभवे धम्मो । सगुणस्स नि-म्मुणस्स च, अयसोऽकित्ती अहम्मो अ ॥ १ ॥ ” तथा—“ नि-र्जितमद्मदनानां, वाक्यायमनोविकाररहितानाम् । विनिवृत्तपराशा-नामिहैव मोक्षः सुविहितानाम् ॥ १ ॥ स्वशरीरेऽपि न रज्यति, शत्रावपि न प्रदोषमुपयाति । रोगजरामरणभयैरव्यथितो यः स-निलसुखी ॥ २ ॥ ” इत्यादि । इति गायार्थः ॥ ११८ ॥

तथा—

वाहगदोमविवक्तारो, धम्मापरिए य उन्नुयविहारे ।

एमाराचितनामो, मवेगरमायण देह ॥ ११६ ॥

‘ वाहग ’ गाहा व्याख्या—वापकदाँपा—अयोगदाना
तुयगादयो ये यन्याभ्यवसायकानुभवहेतव म सद्विपच्छे—वद्विपरमहै
तो वित्तन्याम विद्यादिवि योजना । यदुष्टम्—“ जो ऐह
वादिष्ट दोमए येमराद्विमण्डु । मो सबु तम्म विपरम,
तदियमय चेष्ट भाकंजा ॥ १ ॥ अत्यन्मि रागभावे, तस्मेव उ अ
वरुणगमेस । मावत्र परमहेत, अभावमो तह य तस्मेव ॥ २ ॥
नेनमिं य सदमेत माइत्ताई य मावर्जावाण । मोहम्मि अहाथू,
वत्युमहाव मुराहिदाण ॥ ३ ॥ ” इत्यादि । ‘ धर्माचार्य ’ घमं
दानरि गुरुवित्यर्थ । यथोक्तम्—“ इच्छे वेयावादिच्छ, गुरुमार्द्दल
महागुभावाण । तेभि परावेषेष, पत्त तह पालिच्छ चेव ॥ १ ॥
नेभि नमो तेसि नमो, भावेण पुशो वि चेव तेभि नमो । अणुव
क्षयनर्हद्यरया, जे एष देवि जीवाण ॥ २ ॥ ” इत्यादि । ‘ उण
तविहार ’ अपतिगद्वासर्ल्यादिविहारे सात्त्वगत इति गम्यते, श
माचार्यविरोधाण बा । यथोक्तम्—“ विधा शुद्ध भैङ्ग जलमपि
मित प्रासुद्धतम, मलै क्षिञ्च गात्र वेमनममद्वात्तिक्षरम् । अमू
छांगृत्तित्व श्चिदपि शम कोष्ठपि मनसो, नमस्याम साधूश्चारित
मिति येषामभिक्षमम् ॥ ३ ॥ ” एष च विचारिन्यास फलानिर्देशाङ्ग-
रेण निगमकति—‘ एवमादिविचार्यास ’ एवप्रकारमन्यदव्यात्म
प्रमादनिन्दाद्विचिन्तनम् । यथोक्तम्—“ शिवसामैमूलमेक, दुरपक्षा

प्रोऽसि जीव ! जिनधर्मम् । तद्यदि सपदि तदिच्छसि, नोद्वच्छ-
सि किंमिति तत्र तराम् ? ॥ १ ॥ इत्यादि । किम् ? ‘ संवेगर-
सायनं ’ संवेगः—संसारनिर्वेदो मोक्षानुरागो वा रसायनं—असृतं
निर्वृतिहेतुत्वात्संवेगरसायनं तद् ‘ ददाति ’ प्रयच्छन्ति, एवंचिन्तने
हि संवेग उत्पद्यते । इति गाथार्थः ॥ ११६ ॥

ततः—

गोसे भणिश्चो य विही, इय अणवरयं तु चिद्गमाणस्य ।
भवविरहवीयभूत्रो, जायह चारित्तपरिणामो ॥ १२० ॥

“ गोसे ” गाहा व्याख्या—‘ गोसे ’ प्रत्युपसि भणितच्च
विधिः, चशब्दस्य एककारार्थत्वात् प्रत्युपसि प्राक्प्रतिपादित एव
विधिः, यथा—“ नवकारेण विवोहो ” इत्यादिकः । एवं च प्रति-
दिनानुष्टानं फलप्रदर्शनद्वारेण निगमयति—‘ इति ’ प्रागुक्तप्रका-
रेण ‘ अनवरतं ’ सन्ततं ‘ चेष्टमानस्य ’ प्रदर्शितमनुष्टानं विद्य-
तः आवकस्येति गम्यम् । किं भवति ? ‘ भवविरहवीजभूतः ’ सं-
सारवियोगकारणकल्पः ‘ जायते ’ संपद्यते चारित्रपरिणामः सर्व-
विरतिपरिणतिरिति योऽर्थः । एवं हि देशविरतिमध्यस्यते, उपायप्र-
वृत्तेरवश्यं भवविरहवीजभूतश्चारित्रपरिणामस्तत्रान्यत्र वा भवे भवे-
दिति हृदयम् । इह च “ विरह ” इति सिताम्बरश्रीहरिभद्राचार्य-
स्य कवेदङ्कः । इति गाथार्थः ॥ १२० ॥

एवं श्रीहरिभद्रसूरिरचिते तन्त्रेऽत्र वृत्तिं मया,

प्रायः पूर्वनिवद्धवृत्तिवशतो दिद्गमात्ररूपामिमाय ।

शतक्या नाम निवाजता यदविध किञ्चित्पिवद्ध भवेत्,
 एत् सिद्धान्तविद्यहर्षे चमिजनै चम्यविरोध्य तथा ॥ १ ॥
 इति विद्वितवतोचैर्विभिन्नेता स्वशत्क्या
 यदभिमतसमीक्षापूरि पुरय मयाऽऽग्रम् ।
 बदुदिरशुभभक्ष्या घर्मेवेति भव्या ।
 विदधतु यविभक्ता साधुसन्मानदेवा ॥ २ ॥
 इति श्रीमानदेवमूर्तिविरचिता धावप्रधर्मविधिप्रकरणस्य
 शृण्गि परिसमाप्तेनि ॥
 याप्तमुद्देश्योऽनुस्तुप्परिकल्पनया पैश्चदराशतानि पद्मविशत्य
 चरणि अद्भुतोऽपि १९२६ ॥

॥ समाप्तमिदं सवृत्तिक श्रावकधर्मविधिप्रकरणम् ।

आत्मानन्दग्रन्थरत्नमालायामध्यावधिमुद्रितानां ग्रन्थानां सूची.

—४६—

- | | |
|---|--|
| १ समवसरणस्तवः | २५ चेतोदूतम् |
| २ चूहकमवप्रकरणम् | २६ भष्टादिकाव्याग्रन्थानम् |
| ३ लोकलालिका | २७ चम्पकमालाकथानकम् |
| ४ योनिस्तवः | २८ सम्यकत्वकोमुदी |
| ५ कालसप्ततिका | २९ शाद्गुणविवरणम् |
| ६ देहस्थितिस्तवो लघ्वल्पवहुत्वं च | ३० धर्मरत्नप्रकरणं (स्वोपजटीकया समलंकृतम्) |
| ७ सिद्धदण्डिका | ३१ कन्पसुव्रं सुवोधिकानाम्या टीकया भूपितम्) |
| ८ कायस्थितिस्तवः | ३२ दसराग्रन्थयनम् (भावविजयगलिं दिरचिनटीकयोपेतम्) |
| ९ भावप्रकरणम् | ३३ उपदेशसमृतिका |
| १० नवतत्त्वप्रकरणं (भाष्यविवृतिसमलंकृतम्) | ३४ कुमारपालग्रन्थव्यः |
| ११ विचारपदाशिका | ३५ आचारोपदेशः |
| १२ वन्धपद्विशिका | ३६ रोद्दृश्यशोकचन्द्रकथा |
| १३ परमाणु-पुद्गल-निगोदपद्विशिका | ३७ ज्ञानसाराष्ट्रं (ज्ञानमजरीनाम्या टीकया समलंकृतम्) |
| १४ शावकवत्तमस्तप्रकरणम् | ३८ गुद्धुणपद्विश्यत्पद्विशिकाकुलकं (दिपिकया भूपितम्) |
| १५ देववन्दनादिभाष्यव्रद्धम् | ३९ समयसारप्रकरणं सटीकम् |
| १६ सिद्धपदाशिका | ४० मुकृतसागरम् |
| १७ अनायउच्छुलकम् | ४१ धम्मिलकथा |
| १८ विचारसमृतिका | ४२ धन्यकथानकम् |
| १९ अल्पवहुत्वगर्भितर्वारस्तवनादि. | ४३ प्रतिमाशानकम् |
| २० पद्मसूत्रम् | ४४ चतुर्विनातिस्तुनिसंग्रहः |
| २१ जम्बूस्वामिचरितम् | |
| २२ रत्नपालनृपकथानकम् | |
| २३ सूक्तरत्नावली | |
| २४ मेयदूतसमस्यालेखः | |

| | |
|--|--|
| १० रेत्विकायम् | |
| ११ चेत्रमसामुद्भवय (स्वोत्तरीह का भूषित् ।) | |
| १२ धाटविषि (विषित्वुद्विषया शब्दात्) | |
| १३ शृङ्गमप्रहृष्टी | |
| १४ पाण्डुलिङ्गमुद्भव | |
| १५ पश्चयद्वय | |
| १६ मुख्यसंस्थापनमहृष्टम्भू | |
| १७ कन्दरा प्राचीसंस्थापनया | |
| १८ सम्बालग्निनि | |
| १९ कुवलयमाता कथा—समृद्धि | |
| २० सामाजिकप्रकारय (स्वेच्छाकृ या भूषित्) | |
| २१ कर्त्तव्यात्मुष्टिकाटम् । | |
| २२ कुमारपात्रविमहाक्षम्भू | |
| २३ महापीतिविषि | |
| २४ कौमुदीमिकापन्द्रनाम्भू | |
| २५ प्रशुद्धगीर्द्धविष | |
| २६ वामाभ्युद्भू | |
| २७ पश्चन्द्रन्योप्रकापनमृतादपदम्भू ददीपकरण | |
| २८ रद्दत्तगीतिवदा | |
| २९ विद्वान्वत्तम् | |

| | |
|--|--|
| ३० दन्तद्रासम् | |
| ३१ विहृद्युक्तिमी चादि | |
| ३२ वर्णतिर्यक्ति | |
| ३३ समत्रिक्तमदन्तम् | |
| ३४ केचनदनमहृष्टम्भू | |
| ३५ प्रस्त्रदनि | |
| ३६ कृष्णविष्णविष | |
| ३७ योगदर्शनम् | |
| ३८ यज्ञदर्शनम् | |
| ३९ दक्षनाराहनद स्वाम्भू | |
| ४० मुख्यवृद्धिविमहाक्षम्भू | |
| ४१ अद्वितीयविष्णुकृष्णः | |
| ४२ संष्टुति स्वाम्भू | |
| ४३ गुरुप्रविनिवाच स्वीकृतः | |
| छपायेला परचुरण सहस्रत प्रदेशो | |
| १ नरविद्युक्तिः | |
| २ मुपाचरितम् | |
| ३ मुख्यवृद्धिविमहाक्षम्भू (प्रथम वर्ण) | |
| ४ वल्लविद्यु | |
| ५ वैतसनक्तिविष | |
| ६ सुनुआक्षम्भूक्तिवृश्वायि | |
| ७ वल्लविद्युत्तम्भू | |
| ८ अनुप्राप्तिविमहाक्षम्भूते | |

